झाँसी की रानी : एक परिचय

डॉ0 किशन यादव,

अध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग व शोध केन्द्र,
बुन्देलखण्ड कॉलेज,झाँसी (उ.प्र.)

झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई जी ने रणभूमि में जो वीरता, कौशल, साहस तथा पराक्रम प्रदर्शित किया है, यह शायद और किसी भी वीरांगना के जीवन–चरित्र में नहीं पाया जाता। विशेषतः रण–क्षेत्र में असामान्य शक्तिधारी रिपुदल का जिस साहस, वीरता तथा निपुणता से अपने अंतिम श्वास तक सामना करते हुए वीर–श्रेष्ठ नारी–रत्न ने वीरगति पायी है, वह संसार–भर के युद्ध–इतिहास में असाधारण सी घटना ही है।

19 वीं शताब्दी के आरंभ में, महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर सितारा के निकट, कृष्णा नदी के तट पर वाई नाम का ग्राम है। वहां एक विचारशील विद्वान ब्राह्मण रहा करते थे, उनका शुभ नाम था पं. कृष्णराव तांबे। उनकी योग्यता और विद्वत्ता की ख्याति सुनकर ही, पेशवा जी ने उन्हें अपने न्यायालय की एक न्यायाधीश बना दिया था। केवल यही नहीं, उनके सुपुत्र बलवन्तराव तांबे को भी, जो एक बड़े शूरवीर, मनचले और साहसी योद्धा थे, पेशवा जी ने उन्हें भी अपनी सेना में एक उच्च अधिकारी बनाकर उनकी बड़ी मानवृद्धि की।

इन बलवन्तराव के दो सुपुत्र हुए, मोरोपन्त और सदाशिव। पेशवा बाजीराव द्वितीय के अनुज (छोटे भाई) चीमाजी मोरापन्त के बड़े घनिष्ठ मित्र थे और उनके साथ बड़ा प्रेम भाव रखते थे। जब सन् 1818 ई. में अंग्रेजों ने अंतिम पेशवा महोदय को दुष्प्रबन्ध तथा अन्याय, अत्याचारों को दोष लगाकर राजगद्दी से उतर जाने पर विवश कर दिया, और वह आठ लाख वार्षिक पेंशन लेकर ब्रह्मावर्त में रहने लगे, तो अंग्रेजों ने भाई चीमाजी को पेशवा बनाना चाहा और पूना के आसपास बीस लाख रूपये वार्षिक आय का एक प्रान्त भी उन्हें देना चाहा, परन्तु स्वतंत्रता प्रेमी चीमाजी इस प्रलोभन –जाल में नहीं फंसे और वे अंग्रेजों की कठपुतली बनकर राज्य करना अस्वीकार करके पूना से काशी जी चले गए।

इस परिवार के साथ ही साथ मोरोपन्त का भाग्य–नक्षत्र भी चक्कर में आ गया, और चीमाजी से उनका घनिष्ठ प्रेम होने के कारण वे भी कुछ दिनों पीछे ही, चीमाजी के पास सपरिवार काशी जी जा पहुँचें।

मोरोपन्त की धर्मपत्नी भागीरथी बाई जी बड़ी सुन्दर, सुशीला, हंसमुख और गुणवती देवी थीं। दोनों पति–पत्नि में इतना गहरा प्रेम था कि उन दोनों को यदि एक आत्मा तथा दो शरीर भी कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

कार्तिक बदी अष्टमी सं. 1891 वि. तदनुसार 13 नवम्बर, सन् । 1835 ई. को बड़े शुभ मुहूर्त में, इन्हीं भागीरथी देवी जी ने एक महामनोहर रूपवती कन्या–रत्न को जन्म दिया।

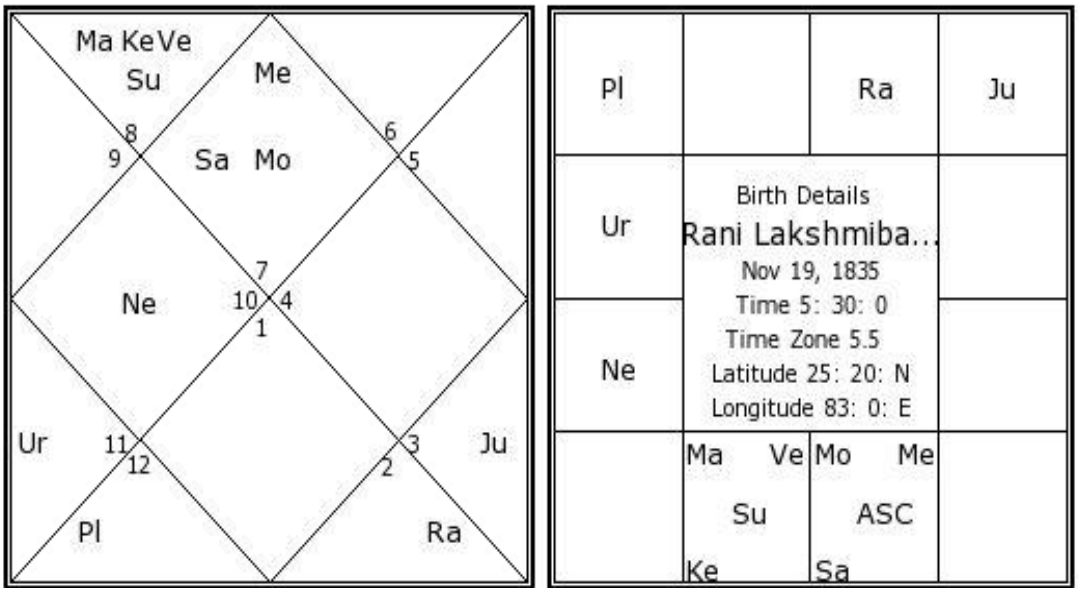

रानी लक्ष्मीबाई का जन्म पत्रक

माता–पिता ने बड़े प्रेम से विधि पूर्वक उसका नामकरण–संसकार कराके उसका शुभ नाम मणिकर्णिका बाई रखा, जो पीछे प्यार–प्यार में ही, मनूबाई कहलाने लगी।

दोनों ने बड़े प्रेम तथा स्नेह से उसका लालन–पालन आरम्भ किया। अभी इस पुत्री के जन्म को कुछ अधिक समय नही बीता था कि काशी जी में चीमाजी का देहान्त हो गया। मोरोपन्त जी को अब काशी जी में रहना कठिन हो उठा। विवश ही वे अपनी धर्मपत्नी तथा मनूबाई समेत काशी जी से ब्रह्मावर्त चले गए। कारण, पेशवाजी भी उन्हें चीमाजी का परम मित्र समझकर, उन पर बड़ी कृपा किया करते थे। अतः वे अब पेशवा जी के ही एक सम्मान–पात्र संगी (मुसाहिब) बनकर सुखपूर्वक अपना जीवन वहीं व्यतीत करने लगे थे।

परन्तु दुर्दैव को इस अबोध अनुपम सुन्दरी बालिका मनूबाई का यह प्रेममय सुख–सौभाग्य भी अधिक काल तक न भाया और यह अभागिन, इस अल्पायु में ही अपनी प्रेममयी माता की प्रेम–भरी गोदी से सदा के लिए वंचित हो गई, और उसके लालन–पालन का सभी बोझ उसे पूज्य पिता मोरोपन्त के सिर पर आ पड़ा, जिसे वे अपने पुरूषोचित ढंग से बड़े प्रेम तथा उत्तमता से निभाने लगे ।[1] इसी कारण से इस मातृहीना रूपा सी बालिका में उसके बाल्यकाल से ही स्त्रीसुलभ लज्जा, शीलता, संकोच आदि शान्त गुणों तथा दोषों की अपेक्षा उद्दण्डता आदि गुण धीरे–धीरे असाधारण रूपा से प्रकट होने लगे, जो शायद माता की मधुर स्नेह–भारी गोदी में कभी विकसित न हो सकते।

इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान ने अपनी अपार माया से इस कोमलांगी नम्रस्भाव रूपवती बालिका को एक ब्राह्मणवंश में स्त्री–जन्म देकर भी, पुरूषोचित वीरोत्साह, साहस, दृढ़ता आदि क्षात्रगुणों की पूरी–पूरी शिक्षा पाने का एक अदभुत अवसर प्रदान कर दिया, जो विधाता क अज्ञात कर्मचक्रम के अधीन उसके आगामी जीवन

की उन घटनाओं की पूर्ति के लिए, गुप्त रूपा से ही तैयार कर दिया, जो भविष्य में होने वाली थीं।

अनायास ही माता की स्नेह–भरी गोद से वंचित होकर अब वह भोली–भाली, परन्तु तीव्र बुद्धि मनोहारिणी बालिका अपने पूज्य पिताजी के साथ पेशवा जी की कचहरी, दरबार तथा महलों में यूं बेरोक–टोक आने लगी, और वहीं अपने समय का एक बड़ा भा बालोचित खेल–कूद में बिताने लगी। धीरे–धीरे वह अपने अपर्वू आकर्षक गुणों के कारण पेशवा जी, उनकी रानियाँ तथा पुत्रों में भी सर्वप्रिय बन गई और पेशवा जी के सभी दरबारी तथा अन्य कर्मचारी भी उससे हार्दिक स्नेह करने लग तथा बड़े प्यार से 'छबीली' 'छबीली' कहकर पुकारने लगे, यहाँ तक कि उसका 'मनूबाई' नाम प्रायः सभी भूल गए।[2]

पेशवा बाजीराव जी के दोनों दत्तक पुत्र नाना साहिब राव साहिब भी मनूबाई के समवयस्क ही थे। उसके साथ खेलते–खेलते वे दोनों भी उसके साथ भाईयों के समान स्नेह करने लगे। अतः प्रायः तीनों इकट्ठे ही देखे जाया करते थे।

जब तक तीनों दुधमुंहे बच्चे रहे, तब तक तो सब इकट्ठे खेलते–कूदते ही रहे, फिर उसे पीछे भी जब कुछ बड़े हो जाने पर, उन दोनों भाईयों की कुछ शिक्षा आरंभ हुई, तो पेशवा जी की कृपा से इस होनहार कन्या को भी उन दोनों भाईयों के साथ ही साथ शिक्षा मिलने लगी और वह पढ़ने–लिखने के साथ ही साथ अस्त्र–शस्त्र आदि चलाना भी सीखने लगी।[3] अतः उन दोनों वीर बालकों के साथ खेलने–कूदने और शिक्षा पाने से वह बालिका धीरे–धीरे वीर–बाला बनती चली गई और उसमें अपने प्राकृतिक स्त्री–स्वभाव तथा गुणों के साथ ही साथ साहस, निर्भयता, वीरता आदि बहुत से पुरूषोचित गुण भी धीरे–धीरे उत्पन्न होते गुए।

अब वह न केवल उन वीर बालकों के साथ–साथ निर्भय रूपा से घोड़ा दौड़ती और कुदाती हुई ही दिखाई दिया करती थी, किन्तु इस छोटी सी आयु में ही उनके साथ सैर–शिकार में भी चली जाया करती थी और कहीं भी भयभीत नहीं होती थी।

किन्तु कभी–कभी वे दोनों शरारती बालक, अपनी बालोचित शरारत और उद्दण्डता से मनूबाई को चिढ़ाने, खिजाने और तंग करने में भी बड़ा आनंद अनुभव किया करते थे, जैसा कि गत परिच्छेद में ही पाठक देख चुके हैं[4] कि किस प्रकार उन्होंने मनूबाई की 'छबीली–छबीली' कहकर पुकार और आप ही तो हाथी पर चढ़ने के लिए उसे उत्तेजित किया, फिर पेशवा जी के कहने पर भी उसे अपने साथ हाथी पर न बिठकार, हाथी भगाकर ले गए, उसे रोने तथा मचलने के लिए वहीं छोड़ गए । तब मनूबाई ने अपनी स्वाभाविक तीव्रता के कारण, बड़ी ढिठाई से यह असाधारण वाक्य कहकर अपने वृद्ध पिता को चकित कर दिया, 'मेरे भाग्य में तो एक क्या, दस–दस हाथी लिखे हैं, और अन्त को उसके स्नेही पिता ने उसकी इस शेखी पर क्रुद्ध होने की अपेक्षा, उसे मंगलमय आशीर्वाद दिया, 'भगवान करें ऐसा ही हो, अपितु तुझे इससे भी बढ़–चढ़कर भाग्य लगें। यदि ऐसा हो तो मुझसे बढ़कर बड़भागी पिता और कौन होगा !

सारांश यह कि इस प्रकार मनूबाई अपने प्राकृतिक स्त्री–स्वभाव तथा स्त्रियोचित नम्र गुणों के साथ ही, पुरूषों के वातावरण में पलती हुई धीरे–धीरे पुरूषोचित कठोर गुणों को भी धारण करती–करती शनैः–शनैः युवावस्था की ओर बढ़ती गई।

सगाई और विवाह

ज्यों–ज्यों मनूबाई इस प्रकार यौवनावस्था के समीप पहुंचती जा रही थी, उसके पिता और उनके परम सहायक स्वामी तथा सखा पेशवा जी को इसके लिए योग्य वर खोजने की चिंता भी दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। कारण, ब्रह्मावर्त और उसके आसपास तो उनहें कोई ऐसा उच्चवंशीय

सर्वगुण सम्पन्न ब्राह्मण युवक दिखाई नहीं देता था, जिसे इस असाधारण गुणवती वीरबाला के लिए योग्य वर समझा जी सकता, और जो इसके भविष्य–जीवन को उसी मान–मर्यादा से व्यतीत करा सकने के योग्य दिखाई देता, जिसमें इस रमणीरत्न का लालन–पालन हो रहा था।

परन्तु भगवान का सर्वशक्ति और दूरगामी हाथ भविष्य के गहन गम्भीर परदों में छिपे हुए गुप्त रहस्यों से अनभिज्ञ, तुच्छ मनुष्यों की चिन्ताओं को, चाहे वह कितनी भी बढ़ी–चढ़ी क्यों न हों, कब कुछ ध्यान में लाता है? वह अपनी एक ही चाल पर नियमानुकूल चलने वाली घड़ी की सुइयों के समान दिन रात अपने कामों में लगा रहता है, [5] और सभी पूर्ण होने वाले महान से महान कार्यों को अनायास ही ऐसी आशातीत रीति से पूरा कर दिखाता है कि देखने वाला विस्मय चकित रह जाता है, और यह सोचने लगता है कि मैंने तो अकारण ही अपनी अल्पबुद्धि तथा अश्रद्धा के कारण, उस सर्वशक्तिमान विश्वकर्ता की सर्वशक्तिमत्ता पर विश्वास न करके, व्यर्थ ही चिन्ता का यह भारी बोझ ढोया है।

भगवान की अपार लीला तथा अद्भुत माया से एक दिन झांसी राज्य के ज्योतिष विद्या विशारद राज ज्योतिषी पेशवा बाजीराव जी से मिलने के लिए अनायास ही ब्रह्मावर्त आ पहुंचे। उनका शुभ नाम पं. तांतिया जी दीक्षित था। स्वभावतः मोरोपन्त जी ने उनके शुभागमन को अपने लिए एक दैवी सहायता समझकर, मांगी और उसकी जन्मपत्री उनके समक्ष रखते हुए बड़े नम्र तथा दीनभाव से कहा, ''महाराज! इस मातृहीना कन्या के लिए यदि आपकी कृपा से योग्य वर मिल जाए तो मैं इसके ऋण से उऋण होकर गंगा नहाऊँ। ज्यों ज्यों यह यौवन अवस्था के समीप पहुंचती जा रही है, इसकी देख रेख मेरे लिए कठिन से कठिनतर ही होती जाती है।''[6]

ज्योतिषी जी ने मनूबाई की जन्मपत्री बड़े ध्यान से देखकर और मीन, मेष आदि की बहुत कुछ गणना करके कहा, भाई इस कन्या के तो राजयोग पड़ा है। यह किसी ऐसे वैसे घर तो जा नहीं सकती। तुम कुछ चिन्ता न करो। जब समय आएगा, तो स्वमेव कोई राजा महाराजा इसके शुभ गुणों पर मोहित होकर, इसके प्रेम का भिखारी बनकर तुम्हारे द्वार पर आ खड़ा होगा। यह काम तुम्हारे या मेरे किए कदापि पूरा न हो सकेगा। वैसे मैं भी प्रयत्न अवश्यक करूंगा आगे रहे इस देवी के अपने संयोग मैं तो केवल एक निमित्त मात्र ही बन सकता हूँ, सो भी यदि प्रभु की इच्छा हो तो, अन्यथा वह भी नहीं।''[7]

अतः हुआ भी ऐसा ही। राजज्योतिषी तांतिया जी के प्रत्यन तथा जोड़ तोड से इस सात वर्षीया कन्या मनूबाई अथवा छबीली का विवाह सन् 1842 में झांसी नरेश श्रीमान गंगाधर राव जी से हो गया, जो अपने राजपाट के लिए एक सुयोग्य युवराज प्राप्त करने की लालसा से अपनी अच्छी बढ़ी–चढ़ी अवस्था में भी किसी शुभ गुणवती और होनहार सुन्दरी से विवाह रचाने के लिए विह्वल हो उठे थे।

ज्योतिषी तांतिया जी ने इस देवी के सुरूप, गुण तथा नक्षत्र राशि की कुछ ऐसी महिमा महाराज से वर्णन की कि वे उसकी अल्पावस्था का भी कुछ विचार ने करके, उसके साथ विवाह रचाने को अधीर हो गए और अन्ततः खूब धूमधाम से दोनों का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हो गया।

झांसी का किला

उस समय भोली भाली अल्हड़ अल्पवयस्का बाला को विवाह के वास्तविक भाव का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। अतः वह आयु भर के बन्धन को भी एक साधारण सा खेल ही समझती थी। कहा जाता है कि जब इन दोनों के विवाह की आवश्यक विधि पूरी की जा रही थी, और दोनों के गठबन्धन का समय आया, तो भोली भाली दुलहिन मनूबाई ने अपनी स्वाभाविक चंचल वृति

के अनुसार पुरोहित जी से यह कहा, ''पंडित जी महाराज तनिक पक्की सी गांठ बांधना।''[8]

उस समय तो वहां जो भी सज्जय उपस्थित थे, वे सभी इस नन्हीं सी दुलहिन के मुख से यह शेखी तथा विनोद भरे असाधारण शब्द सुनकर हॅस पड़े, किन्तु शायद किसी के भी मन में, उसके भविष्य के सम्बन्ध में यह शंका उत्पन्न करके, उसके मुख से यह अपशब्द नहीं कहलवा रहा है और हमें गुप्त आगामी घटनाओं के सम्बन्ध में यह चेतावनी नहीं दे रहा है? यदि ऐसा होता तो शायद उस समय इस भोली भाली होनहार देवी के संरक्षक और शुभचिन्तक पिता और उनके दूसरे सम्बन्धियों को इस विवाह से इतना हर्ष तथा आनन्द कदापि न होता, जितना कि उस समय उसके निकटतम तथा ज्योतिर्मान भविष्य के विचार से उन्हें हो रहा था। कारण, यह बात उन्हें तुरंत ही खटक जाती कि इस नन्हीं दुलहिन के इन भोले भाले शब्दों में भी एक ऐसी भविष्यवाणी छिपी है, जिसका अंतिम परिणाम उसके लिए किसी प्रकार भी शुभ और कल्याणकारी नहीं हो सकता।

किन्तु हमें तो इसमें भी दयालु भगवान की हम निरीह, अल्पज्ञ तथा विवश मनुष्यों पर एक अपार करूणा ही दीख पड़ती है कि हमारे निकट भविष्य की ज्योति तथा प्रसन्नता से हमारी आंखें इतनी चुंधिया जाती हैं कि घोर से घोर भयावनी से भयावनी कृष्णरात्रि भी स्पष्ट रूपा दिखाई नहीं दे सकती। नहीं तो शायद हमारे लिए इस जीवन में कोई एक घड़ी भी हर्ष तथा आनन्द की न आए, और दूर भविष्य में फैलने वाले तिमिर का भयावना तथा अशुभ विचार हमारे वर्तमान और निकट भविष्य के सभी हर्ष तथा आनन्द वर्षों पहले ही मटियामेट कर देने का कारण बन जाए, और उसका भय हमें एक दिन भी सुख शांति न पाने दे।

सारांश यह कि मनूबाई इस विवाह का अंतिम परिणाम चाहे कितना भी दुख भरा, शोचनीय और अशुभ क्यों न सिद्ध हुआ हो, उस समय तो यह विवाह स्वयं दुलहिन मनूबाई ही नहीं, वरन् उसके पूज्य पिताजी तथा दूसरे सभी निकटस्थ सम्बन्धियों के लिए बड़ा शुभ तथा लाभदायक सिद्ध हुआ। कारण, इस विवाह के परिणामस्वरूपा ही मोरोपन्त तीन सौ रूपाये मासिक पर झांसी के दरबार के सर्वमान्य सरदार तथा कर्मचारी बन गए और उनके दूसरे सम्बन्धियों को झांसी राज्य में अच्छी अच्छी नौकरियाँ मिल गई।

केवल यही नहीं, वरनम् जिन मोरोपन्त ने मनूबाई की माता के देहान्त के उपरान्त कुछ तो इस भय से कि कहीं विमाता के हाथों कन्या का उचित रूपा से लालन–पालन न हो, और अपनी निर्धनता तथा दरिद्रता के कारण, अब तक अपने दूसरे विवाह का कोई विचार तक भी अपने मन में कभी न फटकने दिया था, उन्हीं मोरोपन्त ने अब मनूबाई के विवाह से निवृत होकर और उसके मनूबाई से महारानी लक्ष्मीबाई बन जाने पर, शीघ्र ही गुलसराय के एक कुलीन ब्राम्हण वासुदेव शिवराव खानोलकर की युवती कन्या से विवाह रचा लिया, और जिस गृहस्थ सुख से वे चिरकाल से वंचित हो रहे थे, उसका जी भरकर उपभोग करने लगे।

महाराजा गंगाधर राव

एक निर्धन दरिद्र ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न मातृहीना, अल्पायु कन्या अपनी समझ बूझ, जन्मसिद्ध योग्यता तथा चतुराई और असाधारण रूपा सौन्दर्य एवं सबसे बढ़ चढकर अपने शुभ नक्षत्रों तथा सौभाग्य के पुण्य प्रभाव से मनूबाई उपनाम छबीली से महाराजा गंगाधरराव की महारानी लक्ष्मीबाई बन गई और दिनोंदिन अपने पतिदेव की हृदयेश्वरी तथा नयन ज्योति बनने लगी। केवल यही नहीं, अपने स्नेहमय स्वभाव तथा सुशीलता आदि शुभ गुणों से वह राजमहल

में धीरे धीरे सब प्रकार से सर्वप्रियता प्राप्त करने लगी।

उधर उसके शुभातमन के प्रताप से झाँसी राज्य में फैले हुए सभी उपद्रव शनैः शनैः मिट गए और महाराजा गंगाधर जी के सुप्रबन्ध तथा दूरदर्शिता ने सारी प्रजा के मन पर अपना साम्राज्य जमा लिया।[8] वे आस–पास के सभी रईसों, राजाओं और उनसे बढ़ चढ़कर अंग्रेजी सरकार के पोलिटिकल एजेंट करनल स्लीमन के भी प्रेमपात्र बन गए।

परिणामतः इस विवाह से कुछ ही दिन पीछे कनरल साहब ने अंग्रेजी सरकार से महाराजा साहब को शासन अधिकार दिलवाते हुए यह शर्त भी स्वीकार करा ली कि वे बुन्देलखण्ड प्रांत की रक्षा के लिए अपने खर्च से कुछ अंग्रेजी फौज भी अपने राज्य में रख सकें। अतः उन्होंने इस फौज के लिए अपनी रियासत की वार्षिक आय में से 2,27,458 रूपये अलग करके दो पैदल पलटन और तोपखाने के दो दस्ते अपनी रियासत में रख लिये।

तत्पश्चात् जब महाराजा गंगाधर जी के सिंहासनारोहण का शुभ दिन नियत हुआ और इस महोत्सव पर नगर को दुलहिन के समान सजाया गया, तो उसी दिन पोलिटिकल एजेंट साहब ने रियासत के कोष में जमा हुए 3,00,000 रूपये महाराजा साहब को भेंट करके उन्हें अंग्रेजी सरकार की ओर से एक बहुमूल्य सरोपा भी भेंट किया।

रियासत के सभी जमींदारों और जागीदारों ने अपनी अपनी ओर से उचित तथा बहुमूल्य उपहार महाराज को भेंट किए, जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि महाराज गंगाधर ने इस थोड़े से ही मध्यकाल में, जब वे राज्य के भावी शासक के रूपा में अपनी योग्यता प्रकट कर रहे थे, अपने शुभ गुणों के कारण राज्य सुप्रबन्ध के उत्तरदायी अंग्रेज अफसरों में ही नहीं, वरन् अपनी रियासत के सब अमीरों, सब वजीरों और आसपास के सभी रईसों तथा सरदारों में भी कितना सर्वप्रियता तथा कैसा सम्मान प्राप्त कर लिया था।

शासन अधिकार प्राप्त होने पर आपने अपने प्रजापालन और दूरदर्शिता के कारण अपनी प्रजा को नाना प्रकार के सुख देकर, जनता का प्रेम और भी जीत लिया, और सभी शासन विभागों में अपनी गुणग्राहकता से पूरे पूरे अनुभवी, ईमानदार, निर्लोभी, परिश्रमी, दूरदर्शी, सारग्राही, न्यायप्रिय कर्मचारियों को ढूढ़ ढूढ़कर यित किया। श्री राधोरामचन्द्र सन्त जी को, जो उस प्रान्त में अपनी बुद्धिमता, विशालहृदयता तथा उच्च भावों के लिए विशेषरूपा से प्रसिद्ध थे, अपना महामंत्री बनाया और उन्हीं की सुसम्मति से श्री नरसिंह राव को राज्यपाल का पद प्रदान करके, न्याय विभाग के सर्वोत्तम आसन को नामधन्य न्यायप्रिय श्री नाना भूपतकर जी से सुशोभित किया।

जहाँ–जहाँ बुन्देले ठाकुर और दूसरे विद्रोही सरदार उद्दण्डता तथा विद्रोह किया करते थे, वहीं राजसेना की चौकियां स्थापित करके उनकी देख रेख का पूरा पूरा प्रबंध कर दिया, जिसके कारण झांसी राज्य में शीघ्र ही चारों ओर सुख शांति स्थापित हो गई, और प्रजा सब प्रकार प्रसन्न दिखाई देने लगी।

महाराजा गंगाधरराव जी को अपने राजसी ठाठ और सम्मान का बड़ा ही ध्यान था। वे उसे दिन दूना और रात चौगुना बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। राजा रघुनाथ राव तृतीय की अदूरदर्शिता, कुप्रबन्ध, अन्याय, आचरण, धींगा धींगी और व्यर्थ व्यय के कारण राज्य के गौरव तथा वैभव में जो कमी हुई थी, उसके दुष्प्रभाव को शीघ्र ही दूर करने की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

दूसरी ओर महारानी लक्ष्मीबाई जी ने अल्पव्यस्क होने पर भी अपनी स्वाभाविक तीक्ष्णता और विचारशीलता से यथार्थ रूपा में राजलक्ष्मी

सिद्ध होकर अपने पतिदेव की मान मर्यादा में और भी चार चांद लगा दिए।

महाराजा गंगाधर जी को हाथी–घोड़ों का बड़ा शौक था और उन्हें उनके गुणों तथा दोषों की भी विशेष पहचान थी। इधर महारानी लक्ष्मीबाई को, एक निर्धन ब्राह्मण के घर उत्पन्न होने पर भी, पेशवा जी की छत्र छाया में लालन पालन होने के कारण भगवान ने इस विषय में एक विशेष विज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर दे दिया था, जिससे उन्होंने पेशवा जी के होनहार कुमारों के साथ–साथ, अज्ञात रूपा से ही बहुत कुछ सीख लिया था। परिणामतः उन्होंने अपने पतिदेव के हस्तीगृह के बाईस हाथियों में से उनके सर्वश्रेष्ठ तथा सुन्दरतम हाथी को अपनी सवारी के लिए पसन्द करके, अपनी पूर्वोक्त भविष्यवाणी को एक प्रकार से कार्यरूपा में सिद्ध कर दिखाया, जो पांच छः वर्ष की एक अबोध किन्तु उद्दण्ड कन्या के रूपा में अनायास ही अपने पूज्य पिता के सामने उनके मुख से निकल गई थी।

महाराज ने उसके उस चुनाव से प्रसन्न होकर, उस हाथी की मखमली झूलों को सर्वोत्तम सुनहरी रूपहरी जरी के काम से सुसज्जित करा दिया और उसके हौदे को भी सोने–चांदी की गंगा जमनी, मनमोहक बेल–बूटों से खूब सजवा दिया। केवल यही नहीं, वरन् इसी हाथी के सुन्दर चकते हुए श्वेत दांतों को भी सोने के पत्रों में मढ़वाकर उनके गले में सुनहरी हंसली आदि आभूषण तथा टांगों में चांदी की वजनी झांबरें आदि पहनवा दीं।[9] गले में दर्जनों छोटे बड़े घण्टे लटकवा दिए और इस प्रकार उसमें एक विचित्र दर्शनीय राजसी शान पैदा कर दिखाई, जिसे महारानी लक्ष्मीबाई जी की राजसी सवारी के शुभागमन से पहले ही सब ओर धूम मच जाया करती थी और उसे देखने के लिए बालक, बूढ़े, पुरूष, स्त्री दूर–दूर से खिंचे चले आते थे।

यही दशा महारानी जी की सवारी के विचित्र घोड़ों की सजावट की थी। इसके साथ ही उन्होंने महारानी जी की सवारी के लिए एक विचित्र और अद्वितीय चित्रकारी वाला बड़ा ही बहुमूल्य तामझाम विशेष प्रबन्ध के साथ काशी जी के सर्वश्रेष्ठ कार्यकुशल कारीगरों से तैयार करा मंगवाया था। उसको उठाने वाले एक दर्जन कहारों की जगमगाती वार्दियां और सजावट का अन्य सामान देखने वालों की आंखों में चकाचौंध सी पैदा कर देता था।

केवल यही नहीं वरन् अपनी महाराजाई शान को और भी चार चांद लगाने और ईर्ष्या पात्र बनाने के लिए उन्होंने अपनी रियासत में से बड़े ही सुन्दर, सुशील, रूपवान, मनचले साहसी राजपूत युवा छांट छांटकर 500 यौवनोन्मत्त सैनिकों की एक पैदल सेना और 500 सवारों का एक अपूर्व सुन्दर रिसाला भी बना लिया। इनके अतिरिक्त 2000 पुलिस के सिपाहियों का दल और 100 सुन्दर मनोहर जवानों का एक अंगरक्षक दस्ता भी तैयार कर लिया। फिर इनकी शान की ओर भी बढ़ाने के लिए अपने तोपखाने के भी चार दस्ते सुसज्जित कर लिये।

परन्तु महाराजा गंगाधर जी के अपने स्वभाव में जितनी नम्रता और दीनता थी, उतना ही उन्हें अपनी राजसी आज्ञाओं के पालन कराने का भी विशेष ध्यान रहता था। इसलिए कुछ लोग उन्हें क्रोधी भी समझने लगते थे। साधारण से साधारण अथवा आवश्यक काम भी, जो वे किसी कर्मचारी को सौंप देते थे,[10] उसका ठीक समय पर और उत्तम रीति से पूर्णता को पहुंचना भी परमावश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य समझा जाता था; अन्यथा उस व्यक्ति की महाराज के क्रोध से कोई भी रक्षा न कर सकता था।

ओरछा, दतिया, समथर, चरखारी, पन्ना, छतरपुर आदि सभी छोटी बड़ी रियासतों के सभी राजा तथा रईस उन्हें 'काका साहिब' कहकर ही सम्बोधन किया करते थे, और उन सबकी दृष्टि में

उनका बड़ा सम्मान था। उनकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, सारग्राहकता, न्यायप्रियता, दानशीलता, गुण परीक्षण आदि अनेकानेक गुणों की दूर तथा समीप चर्चा रहा करती थी। अंग्रेज अफसरों की दृष्टि से उनकी मान मर्यादा किसी भी दूसरे नृपति से कम न थी और सब बड़े बड़े अफसरों के साथ भी उनके सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ तथा मित्रवत् थे और वे सभी उनका बड़ा सम्मान किया करते थे।

दुख की घड़ी

जब परम दुःखिनी महारानी लक्ष्मीबाई राजमाता का परम सौभाग्य प्राप्त करके भी इस महान सम्मान से वंचित हो, पुत्र शोक के हृदय विदारक परम दुःख का शिकार हुई, उस समय उनकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी। उन्हें मातृरूपा से अपने इस महान दुर्भाग्य पर जो दुःख तथा सन्ताप हुआ उसका तो वर्णन ही क्या? महाराजा गंगाधरराव को भी इस अप्रत्याशित दुःख और भयानक वज्रपात से जो आघात पहुंचा उसका वर्णन भी सर्वथा असंभव है। परन्तु पिता होते हुए भी उनका यह सब दुःख तथा संताप स्वाभाविक तथा प्राकृतिक ही था।

कारण, उन्होंने अपने पूज्य पुरूषों का नाम तथा वंश स्थिर रखने और उनकी बेल चलाने के लिए और अपने असाधारण सौभाग्य से आशातीत रूपा में जो यह विशाल राजपाट पाया था, उसकी समस्त शोभा तथा महत्व को स्थिर रखने की उच्च आकांक्षा से एक सर्वोत्तम उत्तराधिकारी प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा को अपने हृदय में स्थान देकर ही तो उतरते जीवन में यह विवाह रचाया था।[11] किसी नीच विषय भोग लालसा से नहीं, वरन् अपने इस सर्वश्रेष्ठ धार्मिक तथा मानुषिक कर्तव्य की पूर्ति के निमित्त ही उन्होंने एक ऐसी रमणी रत्न की खोज की थी, जो अपने शुभ तथा सर्वोत्तम गुणों की सहायता से उनकी इस हार्दिक इच्छा को यथेष्ट रूपा से पूरा करने केलिए सब प्रकार से सुयोग्य समझी जा सकती थी।

फिर उन्होंने अपने हिन्दू धर्मशास्त्र के परम पवित्र तथा सर्वोत्तम नियमों की पालना में जिस धैर्य, शांति, सावधानी, श्रद्धा तथा प्रयत्न से सात आठ साल तक उस सुन्दरी के राजमाता बनने के योग्य होने की प्रतीक्षा की, वह तो उन्हीं जैसे धर्मपरायण और कर्तव्यपालक तपस्वी पति का ही भाग्य कहा जा सकता है। अन्यथा कोई अपने पाशविक विषय भोग की लालसाओं में फंसा हुआ मनुष्य न तो इस विचार से किसी सात आठ वर्षीय अल्पायु कन्या के साथ विवाह ही कर सकता था और न इतने दिन तक उसके एक सदृढ़, स्वस्थ तथा पुष्ट सन्तान की माता होने की योग्यता प्राप्त करने की, ऐसे अनुपम धैर्य तथा शांति से प्रतीक्षा ही कर सकता है।

इसीलिए जब उनकी यह सर्वोत्तम तथा परमप्रिय धार्मिक तथा सांसारिक अभिलाषा इस प्रकार पूरी हो जाने पर भी, उसका अन्तिम परिणाम शुभ तथा कल्याणकारी न हुआ, और कराल काल में निर्दय हाथों ने उनकी सभी प्यारी से प्यारी पवित्र से पवित्र, शुभ से शुभ तथा उत्तम से उत्तम अभिलाषाओं और आकांक्षाओं पर यूं पानी फरे दिया तो उस अभागे पिता के मन में समस्त धैर्य तथा शांति के लोप हो जाने और उसके इस प्रकार निराश तथा पुत्रशोक के अगाध समुद्र में डूब जाने पर आश्चर्य ही क्या हो सकता है।

परिणाम, इस हृदयविदारक घटना ने महाराजा गंगाधरराव के कोमल हृदय पर एक ऐसा भयानक आघात किया कि वे उसे सहन न कर सके और विहल होकर रोगशय्या पर गिर पड़े एवं फिर पूर्ण रूपा से कभी न संभल सके।

अपने प्राणधार, जीवनसर्वस्य पतिदेव की इस अचानक और निराशामय व्याधि से व्याकुल होकर महारानी लक्ष्मीबाई अपने मातृहृदय के सारे दुःख और सन्ताप को भूल गई, और अपने

महादुःख कातर भग्न हृदय पर धैर्य तथा सहनशीलता का भारी पत्थर रखकर, अपने प्राणप्यारे जीवन सर्वस्य पतिदेव की टहल सेवा में जी जान से लग गई।[12] अब वह अपने सब दुःख तथा चिन्ताएं छोड़, अपनी ज्ञान ध्यान तथा धार्मिक श्रद्धा भक्ति भरी मीठी मीठी बातों से, अपने पतिदेव के इस शोक तथा महादुःख के भारी बोझ को सब प्रकार से हलका करने का प्रयत्न करने लगी।

एक दिन उन्हें इस पुत्रशोक पूरित लम्बी बीमारी से अहसहाय कष्ट से बहुत ही निढाल देखकर, बड़े धैर्य तथा प्रेम भरे स्वरों में अपने पतिदेव से बोली, ''प्राणनाथ! आप तो एक वीर पुरूष होकर भी इस दुर्भाग्य के आघात को सहन करने में ऐसी दुर्बलता प्रकट कर रहे हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता।[13] तनिक मुझ अभागिन की ओर तो देखिए! मैं एक मन्दभाग्य माता होकर भी, कैसे धैर्य तथा दृढ़ता से इस हृदयविदारक दुःख तथा वेदना को सहन कर रही हूं। इस संकट भरे संसार में जीवन के साथ मृत्यु तो सदा ही से ऐसे लगी हुई है, जैसे दिन के साथ रात या वसन्त के साथ पतझड़! कोई बालक हो या वृद्ध, पुरूष हो या स्त्री, जिसने भी जगत में जन्म लिया है, उसे एक न एक दिन मरना अवश्यमेव है। आप तो मुझसे बहुत अधिक गीता, उपनिषद् आदि धर्मग्रंथों के पवित्र ज्ञान के ज्ञाता हैं, फिर इस दारूण दुःख के समय यह क्यों भूल बैठे हैं कि सब ही इस असार संसार में अपने–अपने पिछले जन्मों के भले बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए आए हैं। अतः जो जीव भी अपने कर्मभोग भोगकर इस संसार से जल्दी ही चले जाते हैं, वे उन अभागों से बहुत श्रेष्ठ तथा उत्तम हैं, जो वर्षों बहुत वर्षों तक यहां जीवित रहकर नाना प्रकार के दुःख सुख भोगते हुए, असंख्य पाप पुण्य के बन्धनों में फंसकर, इस लोक के साथ ही साथ अपना परलोक भी बिगाड़ते या बनाते रहते है।[14] कारण, इन्हीं भले या बुरे कर्मों से ही तो उन्हें अपने उन बुरे भले कर्मों का फल भोगने के लिए पाप तथा दुःख भरे संसार में बार–बार जन्म लेना और जीना मरना पड़ता है। अतः जो पवित्र जीव इस असार संसार में आकर थोड़े ही दिन अथवा कुछ ही महीने या वर्ष तक जीवित रहकर शिशु अवस्था ही में परलोक सिधार जाता है, उससे बढ़कर भाग्यशाली तो शायद और कोई हो ही नहीं सकता। कारण, वह तो सर्वथा उस बन्दी के समान है, जो केवल थोड़े से समय के लिए कारागार में आकर अपने अपने दुःख भरे बन्दी जीवन के दिन काटकर शीघ्र ही फिर स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है।''

सन्तप्तहृदय, दुःख से व्याकुल महाराजा गंगाधरराव कुछ देर तक तो चुपचाप बैठे हुए, एक निर्जीव पाषाण मूर्ति के समान रानी लक्ष्मीबाई की ये ज्ञान और उपदेश भरी बातें ध्यान से सुनते रहे, किन्तु अन्त में एक हृदय विदारक ठंडी सांस भरकर बोले, ''प्राणेश्वरी! जो धर्मज्ञान भरी बातें तुम कर रही हो, वे मेरे लिए कुछ नई नहीं और न मैं उन्हें भूला ही हूँ।[15] मुझे सब कुछ ज्ञात है और उसके महत्व तथा गूढ़ तत्व को भी भली प्रकार समझता हूँ किन्तु क्या करूं ! मेरा यह सांसारिक मोह माया के पाप–पंक में फंसा हुआ पापी मन नहीं मानता और किसी भी प्रकार समझाए नहीं समझता। रह रहकर मुझे यही पछतावा आता है कि देखों, मैं वर्षों तक एक अभागे प्यासे मृग के समान कैसे इस झूठे जग के मृगतृष्णा जाल में फंसा हुआ यह समझता रहा कि मैं ही अपने पूज्य पुरखाओं के वंश को चला सकता हूँ और स्थिर रख सकता हूँ। मैं ही अपने किसी असाधारण सौभाग्य से, बिल्कुल आशातीत रूपा से प्राप्त हुए इस विशाल राज्य सिंहासन के लिए एक ऐसा योग्य उत्तराधिकारी पैदा कर सकता हूँ जो मेरे और पूज्य पुरखाओं के शुभ नाम को वर्षो, नहीं, नहीं, शताब्दियों अपितु युग–युग तक स्थिर रख सके।[16] मैं अपने इस मिथ्या अभिमान और अहंकार में फंसकर अपने अज्ञान और कुबुद्धिवश यह सर्वथा भूल गया कि यह सब सौभाग्य तो भगवान की देन है और यह

सब कुछ उन्हीं के सर्वशक्तिमान हाथों में है, मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं। यदि उन्हें हमारा वंश चालू रखना होता, तो मेरी पहली स्वर्गवासिनी रानी की इतनी संतानों में से क्या कोई भी सुपुत्र जीवित न रहता? हाय, इस झूठी लालसा में मैंने अपने साथ तुम्हारे पवित्र जीवन को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया! राज–ज्योतिषी के मुख से तुम्हारे उच्च नक्षत्रों और शुभ गुणों की महिमा सुनकर, तुम जैसी सर्वगुण सम्पन्ना माता से ऐसी ही गुणभरी सन्तान प्राप्त करने की लालसा को अपने हृदय में स्थान देकर मैं धर्मशास्त्र की सारी मान–मर्यादा भूल गया! हाय, मैंने उसके सर्वथा विरूद्ध मनमाने तौर पर तुम्हारे साथ विवाह रचा लिया! नहीं तो क्या तुम सात आठ वर्षीय, अल्पायु, अज्ञान, अबोध, भोली भाली बालिका मुझ जैसे अधेड़ दूल्हे की दुलहिन बनाए जाने योग्य थीं? हाय! हाय! मैंने अपनी इस अन्धी स्वार्थ भरी लालसा में फंसकर यह कैसा घोर अन्याय और महापाप कर डाला।[17] बस यही पछतावा मुझ रह रहकर मार रहा है और अवश्यमेव यह इसी पाप का कड़वा फल है जो आज मुझे इस प्रकार भोगना पड़ रहा है।''

महारानी– नाथ! नाथ! यह आप क्या कहते हैं? आपने तो मुझ दरिद्र ब्राह्मण कन्या को दरिद्रता तथा कंगाली के महानरक से निकालकर राज्यसुख से स्वर्ग में पहुंचाने का महापुण्य कमाया है। यदि आप मुझे अपनाकर मुझ पर यह कृपा न करते तो मैं इस विशाल राजपाट का यह समस्त सुख सौभाग्य कैसे पा सकती थी? क्या आपकी यह कृपा भी किसी प्रकार से कोई पाप समझी जा सकती है?

महाराज क्यों नहीं! क्यों नहीं! संसार में इससे बड़ा पाप कोई और क्या हो सकता है कि मुझ जैसा कोई अधेड़ बूढ़ा व्यक्ति अपने धन माल और सम्पत्ति सौभाग्य के अनुमान से उन्मत्त होकर किसी सात आठ वर्षीय दुधमुंही कन्या के लोभी संरक्षकों को लोभ जाल में फंसाकर उस अभागिनी अबला को सदा के लिए अपनी दासी बना ले और उसके यौवन उपवन को निर्दयता से रौद डाले! रही तुम्हें निर्धनता और दरिद्रता के महानरक से निकालकर राज सुख के स्वर्ग में पहुंचाने की बात, सो इसमें भी मैंने तुम्हारा क्या उपकार किया है! यह भाग्य विधाता ने तुम्हारे भाग्य में लिख ही दिया था तभी तो राज ज्योतिषी जी को तुम्हारी जन्मकुण्डली से स्पष्ट रूपा से यह पता लग गया।[18] यदि उनकी बातें सुनकर मैं तुम्हारे रूपा सौन्दर्य, शुभगुणों और उच्च ग्रहों के लोभ से अन्धा होकर दुर्दम्य राहु के समान बीच में न कूद पड़ता और तुम्हारे साथ विवाह न रचा बैठता, तो न जाने तुम किस, अपने समान आयुवाले, नवयुवा राजा या राजकुमार के महलों की शोभा बढ़ातीं और आज मुझ अभागे के साथ मिलकर अपने ज्येष्ठ पुत्र के शोध में विह्वल हो यूं छिप छिपकर लहू के आँसू कदापि न बहातीं। हाय! हाय!! मेरे दुर्भाग्य और पापों की घनघोर घटाओं ने तुम्हारे सुख सौभाग्य के चमकते दमकते सूर्य को भी अपने दुर्भाग्य के परदे में छिपाकर, तुम्हारे उज्जवल भविष्य को भी मेरे साथ कितना तिमिरमय बना दिया। इस महापाप के प्राश्यश्चित रूपा ही तो आज मैं यह महान नरक यातना भोग रहा हूँ और न जाने कब तक भोगता रहूँगा।

महारानी प्राणेश्वर! प्राणनाथ! इस भ्रममय विचार को अपने मन से दूर भगा दें ताकि यह फिर आपके मन में कभी सिर न उठा सके! ज्ब भगवान ने मेरे किसी पिछले जन्म के पुण्यकाल से मेरा संयोग ही आपके साथ कर दिया था, जब मेरे और आपके पूर्व जन्म जन्मान्तर के सब कर्म ही परस्पर ऐसे मिले जुले थे कि हम दोनों इस जन्म में एक दूसरे के पल्ले कैसे बंध सकती थी। भगवान जाने, मैंने तो अब तक कभी स्वप्न में भी यह विचार अपने मन में नहीं आने दिया कि आपके साथ मेरा होने में मेरे साथ किसी प्रकार का कोई अन्याय या अत्याचार हुआ है।[19] मैंने तो सदा ही आपको अपना पूज्य देवता समझा है और जब तक जीवित रहूँगीय, सदा समझती रहूंगी।

अब रही संतान शोक की बात तो क्या यदि मैं आपकी जगह किसी अन्य युवा पति के साथ ब्हायी जाती, तो निश्चय ही यह दुर्दिन मुझे न देखना पड़ता ? क्या युवा माता पिता की संतान अमर होकर संसार में जन्म लेती है, या किसी भी युवा माता पिता को कभी संतान शोक में फंसना नहीं पड़ता? यह तो अपने–अपने भाग्य की बात है। जिन्हें यह दुःख भोगना होता है, उन्हें तो अवश्यमेव भोगना पड़ता है, चाहे वे वृद्ध हों या युवा। वे किसी प्रकार भी इस महादुख से कदापि नहीं बच सकते। फिर यह भी कैसे कहा जा सकता है कि यदि यह अभागा बालक जी भी जाता, तो किसी बड़ी आयु में जब यह सर्वगुणों से सम्पन्न हो जाता, तब हमें इसकी मृत्यु का महाशोक भोगना ही पड़ता ? क्या उस अवस्था में उस दुःख के साथ कोई भी तुलना हो सकती है? फिर अभी तो आप और मैं दोनों ही, प्रभुकृपा से सब प्रकार संतान उत्पन्न करने के योग्य हैं, न जाने अभी और कितने बच्चे पैदा होंगे, अतः इतनी निराशा की बात ही क्या है? किसी प्रिय से प्रिय स्वजन की मृत्यु का यह शोक तो केवल थोड़े ही दिनों का हुआ करता है। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, उस दुःख तथा शोक का बोझ भी मनुष्य की छाती पर से हलका होता जाता है और एक दिन वह अपने दूसरे कामकाज में इतना निमग्न हो जाता है कि उसका ध्यान तक भी कभी उसके मन में नहीं आता।

अपनी शुद्धहृदया, दुःख सुख की संगिनी महारानी के इन सांत्वना तथा ढाढ़स भरे मीठे वचनों से यद्यपि उस समय तो महाराजा के पुत्र शोक संतप्त मन को बहुत कुछ शांति प्राप्त हुई, परन्तु फिर भी इस हृदयवेधक आघात का दुष्प्रभाव महाराजा गंगाधरराव के मन से पूर्णतया दूर न हो सका और सब प्रकार के औषधोपचार से भी उनका स्वास्थ्य कभी पूरा पूरा नहीं संभला। कुछ न कुछ शारीरिक कष्ट बराबर चलता ही रहा।

दत्तक विधान

महाराजा गंगाधरराव का स्वास्थ्य दिनों दिन बिगड़कर उनका रोग लम्बा ही होता चला गया। दिनों से सप्ताह, सप्ताहों से महीने और महीनों से वर्ष बन बनकर बीतते गए।[20] यद्यपि अगले ही वर्ष अर्थात् सन् 1852 में, नित नये औषधोपचार से नीरोगता की कुछ आशा उत्पन्न हुई, परन्तु शोकातुर ज्येष्ठ पुत्र के वियोग का यह घुन जो लग चुका था, उसके कारण उनके रोग–जर्जर शरीर में फिर पूरी पूरी शक्ति तथा स्फूर्ति कभी भी नहीं आ सकी और उनकी शारीरिक निर्बलता ज्यों की त्यों बनी रही।

अक्टूबर, सन् 1853 की विजयदशमी का शुभ दिन आ पहुंचा। इस मंगल अवसर पर झांसी राज्य में देवी महालक्ष्मी की पूजा का महोत्सव सदा से ही विशेष प्रबन्ध और बड़े समारोह तथा धूमधाम से मनाया जाता था। इस वर्ष यद्यपि महाराज का शरीर बड़ा दुर्बल था, परन्तु फिर भी उन्होंने अपने राज्यकुल की अधिष्ठात्री देवी की वार्षिक पूजा में विशेष श्रद्धा, भक्ति तथा प्रयत्न प्रकट किया और यह महोत्सव खूब जी खोलकर मनाया। विजयदशमी का दरबारे आम भी उचित धूमधाम और बड़ी शान से लगाया।

इस शुभ अवसर पर अपनी प्राणप्रिय प्रजा को अपने आन्दोत्सव में पूरा–पूरा भाग लेता हुआ देखकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए और प्रजा ने भी रामराज्य का सा आनन्द उपभोग किया। केवल यही नहीं, वरन् समस्त प्रजा ने अपने अपने घरों में तथा सम्मिलित उत्सवों में श्री महाराज के स्वास्थ्य और चिरायु प्राप्ति के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थनाएं कीं।

परिणाम यह हुआ कि पूजा उत्सव और दरबार के दिनों में महाराज के दुर्बल और अशक्त

शरीर पर साधारण से कुछ अधिक परिश्रम का जो बोझ पड़ा, उसी के दुष्प्रभाव से वह शोक तथा रोग जर्जर शरीर धीरे धीरे अधिक से अधिक शिथिल पड़ता गया, और उसी दिन से महाराज का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। शायद उन्हीं दिनों आहारादि में भी कोई भूल चूक हो गई हो।[21] इससे पहले तो आपको अजीर्ण हुआ, फिर मरोड़ लग गए और फिर कुछ दिनों में ही उन्होंने असाध्य संग्रहणी महारोग का विकराल रूपा धारण कर लिया। चिकित्सा के लिए दूर दूर से चतुर से चतुर और अनुभवी वैद्यराज तथा हकीम बुलाए गए, सभी ने अपनी योग्यता दिखाने का पूरा पूरा प्रयत्न किया और बहुमूल्य औषधियां सेवन कराई, परन्तु किसी की एक न चली।

अन्त में झांसी के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट मेजर ऐलिस ने पोलिटिकल एजेंट मेजर मैलकम हेली को महाराज की इस अवस्था से सूचित किया। उन्होंने भी इस संबंध में विशेष सहायता दी, परन्तु व्यर्थ ही सिद्ध होती रही।

सारांश, जप–तप, पूजा–पाठ, यज्ञ–अनुष्ठान सभी कुछ किए गए, परन्तु किसी से भी कोई लाभ की सूरत पैदा होती हुई दिखाई न दी। सच है– ''करम की गति टारे नाहिं टरे।'' उन दिनों पतिप्राणा सती महारानी लक्ष्मीबाई जी की दशा अवर्णनीय थी। वे दिनरात अपने पति की शय्या के पास बैठी हार्दिक श्रद्धा और भक्ति भरे मन से अपने सुख सौभाग्य तथा अपने प्राणपति की जीवन रक्षा के लिए प्रार्थना करती रहती थीं। उनकी सब प्रकार की टहल सेवा भी वे आप ही अपने हाथ से किया करती थीं। उनके लिए खाना, पीना, सोना, विश्राम करना सभी कुछ असम्भव सा हो गया था। यहाँ तक कि उनका यह अथक परिश्रम और पति सेवा की यह लगन देखकर राजभक्त कर्मचारियों को उनके स्वास्थ्य की भी चिंता होन लगी थीं, परन्तु उन्हें तो अपने जीवन की कुछ भी चिन्ता न थी, मानो उनकी दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य न था।

विजयदशमी के पश्चात् तीसरे सप्ताह से महाराज की दशा और भी अधिक निराशाजनक सी दिखाई देने लगी। परन्तु महाराजा अपने जीवने से कुछ अधिक निराश नहीं थे। किन्तु फिर भी उन्होंने अपनी स्वाभाविक दूरदर्शिता से एक दिन अपने प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव और अपने श्वसुर अर्थात् महारानी लक्ष्मीबाई जी के पूज्य पिता मोरोपन्त जी को बुलाकर उनसे कहा, ''यद्यपि मैं अपने जीवने से निराश नहीं हो गया और मुझे विश्वास है कि उचित औषधोपचार से मैं अवश्यमेव बच जाऊंगा, फिर भी मेरी यह इच्छा है कि मैं अपने वंश के वासुदेव नेवालकर के सुपुत्र आनन्दराव को नियमपूर्वक गोद ले लूं, जिससे यह राजपाट हमारे वंश में स्थिर रह सके और मेरे पीछे इसके उत्तराधिकार का कोई झगड़ा उत्पन्न न हो।''

आनन्दराव की आयु उस समय प्रायः पांच वर्ष की थी। वह एक सुन्दर, तीव्र बुद्धि होनहार बालक भी जान पड़ता था। अतः महाराज ने महारानी लक्ष्मीबाई जी की सम्मति से उसे गोद ले लेने का निश्चय किया था।

महाराज के यह इच्छा प्रकट करते ही इसका सब प्रबंध कर दिया गया, और झांसी के प्रसिद्ध विद्वान राजपंडित विनायकराव जी ने इस संस्कार के संबंध में, सब शास्त्रोक्त विधान नियमपूर्वक पूर्ण कराए और झांसी राज्य के प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव जी, महारानी के पिता मोरोपन्त और लाला लाहौरीमल आदि बहुत से उच्च राजकर्मचारियों तथा दूसरे कार्यकर्ताओं, नगर के बड़े बड़े माननीय नागरिकों तथा सेठ साहूकारों आदि को इस संस्कार से सम्मिलित करके इसे उचित धूमधाम से सम्पादित किया गया।

इसी अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव जी, मोरोपन्त जी और दूसरे सर्वमान्य राजकर्मचारियों आदि तथा स्वयं असिस्टेण्ट पोलिटिकल एजेण्ट मेजर ऐलिस की उपस्थिति में

महाराज ने इस संस्कार के संबंध में एक सूचनापत्र लिखवाकर अंग्रेजी सरकार की सेवा में पहुंचाने के लिए मेजर ऐलिस साहब को सौंप दिया, जिसमें यह लिख गया था।

''बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने से पहले मेरे पूज्य पूर्वजों ने जिस प्रकार अंग्रेजी सरकार की सेवा की है, वह यूरोपभर मे विदित है। स्वयं मैं भी जिस प्रकार यथाशक्ति सरकार की हर आज्ञा का पालन करता हूँ, उसका भी समस्त वृत्तान्त सभी पोलिटिकल एजेण्ट महोदयों पर प्रकट है। अब एक असाध्य रोग से पीड़ित होने के कारण मुझे बड़े शौक से अपने वंशोच्छेदन की चिन्ता उत्पन्न हो गई है, किन्तु मैं सदा ही सरकार बरतानिया का सच्चा सेवक रहा हूँ, ओर उसकी भी सदा ही मुझ पर कृपादृष्टि रही। अतः मैं सरकार का शुभ विचार उस सन्धि पत्र की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो मेरे पूज्य पूर्वजों के साथ हो चुका है। इसी संधि पत्र के अनुसार मैंने एक पांच वर्षीय बालक आनन्दराव को गोद लेकर उसका नाम दामोदर गंगाधरराव रख दिया है। यह बालक मेरे ही कुल से है और सम्बन्ध में मेरा पोता लगता है। मुझे यह आशा है कि प्रभुकृपा और सरकार बहादुर की दयादृष्टि से मैं शीघ्र ही नीरोग हो जाऊंगा।[22] मेरी आयु के विचार से भी यह बहुत सम्भव है कि भविष्य में किसी समय मेरे कोई संतान भी हो जाए। यदि ऐसा हुआ तो उस विषय पर उस समय फिर विचार कर लिया जाएगा। किन्तु यदि मैं इस समय ही इस रोग से बच सका, तो जिस उत्तमता से मैं सरकार की सब प्रकार सेवा करता रहा हूं, उस पर यथोचित रूप से ध्यान देकर इस छोटी आयु के बालक पर भी सरकार बैसी ही दयादृष्टि रहनी चाहिए, जैसा कि मुझ पर रही है और जब तक मेरी जीवनसंगिनी अर्धागिनी जीवित रहे, वह इस राज्य की महारानी और उस बालक की माता समझी जाए। राज्य का सब प्रबंध उसी के हाथ में रहे जिससे मेरे पीछे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए।''

यह पत्र मेजर ऐलिस के हवाले करते हुए महाराज की आंखों में आंसू झलक आए, उन्होंने अपनी यह अभिलाषा पूरी किए जाने के लिए मेजर ऐलिस से बार–बार आग्रहपूर्वक प्रार्थना की और उस संधि पत्र की बार बार याद दिलाई, जिसकी दूसरी धारा से स्पष्टतया यह लिखा है था कि, 'झांसी राज्य का शासन अधिकार महाराज गंगाधरराव को वंश परम्परा के लिए लिख दिया गया है, चाहे उनके उत्तराधिकार उनके मूल में उत्पन्न हुए हों, या गोद लिए हों। उधर मेजर ऐलिस साहब ने भी बड़ी सहानुभूति और सुजनता भरे स्वर में यह कहा ''महाराजा साहब! टापका यह पत्र गवर्नमेण्ट के पास भेजते हुए जो भी सहायता मुझसे आपकी हो सकेगी, वह मैं अवश्यमेव करूंगा'' ।[23]

इतनी देर तक वार्तालाप करते रहने तथा अन्तर भावोद्वेग से दुर्बलता बढ़ जाने केकारण, महाराजपर उस समय मूर्छा छा गई और वे बेसुध हो गए। अतः मेजर ऐलिस और कप्तान मारिटन तुरंत ही राजा साहब को कुछ औषधि दिलवाकर वहां से अपने बंगले को चले गए।

रानी लक्ष्मीबाई जी भी महाराज की शय्या के समीप ही परदे की पीछे बैठी हुई थीं। उनके चले जाने पर वे तुरंत ही महाराज के चरणों में पहुंच गई। उस समय महारानी की जो व्याकुल अवस्था थी, लेखनी में इतनी शक्ति कहां जो उसे लेखबद्ध कर सके।

कुछ देर दबा दारू होने के पश्चात् बड़ी कठिनता से महाराज कुछ कुछ सावधान हुए, परन्तु दुर्बलता इतनी बढ़ गई थी कि तुरंत ही फिर घोर निद्रा सी छा गई। दुःखित महारानी शोकमूर्ति बनी, एक निर्जीव पाषाण प्रतिमा के समान, उनके चरणों में बैठी हुई शोकातुर, अश्रु भरे कमल नेत्रों से बराबर उनके रोग जर्जर तथा चिरकाल की कठिन पीड़ा से मुरझाए हुए मुखड़े को देख देखकर अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाती रहीं।

राजभक्त प्रजा के समूह बड़ी गम्भीरता से चुपचाप दबे पांव आ आकर राजमहल के सामने इकट्ठे होते और अपने सर्वप्रिय प्रजापालक महाराज का स्वास्थ्य समाचार सुन सुनकर उनकी चिरायु के लिए प्रार्थना करते हुए, वैसे ही चुपचाप शोकातुर भाव से वापस चले जाते थे।

अगले दिन 20 नवम्बर को प्रायः दुपहर के समय महाराज की आंखें खुलीं, परन्तु इस दीर्घ तथा घोर निद्रा से भी आपके स्वास्थ्य में कोई प्रगति न दीख पड़ी। इसके विपरीत यही जान पड़ा कि अब आपकी जिव्हा की वाक्शक्ति भी लुप्त हो गई है, और वे कुछ बोल भी नहीं सके। यह अवस्था देखकर परमदुःखिनी महारानी और भी व्याकुल हो गई ओर दुःख तथा शोक से उनका हृदय फटने लगा।

समस्त दरबारियों में सनसनी फैल गई। एक वृद्ध अनुभवी और विशेष विश्वस्त दरबारी महारानी को ढ़ाँढ़स बंधाने और धैर्य दिलाने लगे। शेष ने महाराज के औषधोपचार की चिन्ता की। बहुमूल्य से बहुमूल्य औषधियां दी जाने लगीं। कुछ देर महाराज ने फिर आंखें खोलीं और बड़े दुर्बल तथा चिन्तापुर क्षीण स्वरों में ऐलिस साहब को याद किया।

मंत्री जी ने तुरंत ही एक सवार द्वारा मेजर साहब को सूचना दी। वे अपने विशेष डाक्टर को साथ लिए तत्काल ही महल में आ पहुंचे। ये डाक्टर साहब बड़े ही कुशल और अनुभवी समझे जाते थे। महाराज साहब ने मेजर साहब से कुछ बातचीत करनी चाही। परन्तु मेजर साहब ने उनके फिर मूर्छित हो जाने के भय से उन्हें रोकते हुए कहा, ''पहले आप भली भॉति नीरोग हो जाइए। यह सब बातचीत पीछे होती रहेगी।''[24]

डॉक्टर साहब ने महाराज का बड़े ध्यानपूर्वक डॉक्टरी अन्वेषण करके उनके लिए एक बहुमूल्य नुस्खा लिया, परन्तु उस समय के सभी धर्मनिष्ठ हिन्दू अंग्रेंजी औषधियों का प्रयोग वर्जित मानते थे। अतः महाराज ने बड़ी दृढ़ता से अंग्रेजी औषध सेवन करने से इनकार कर दिया। इस पर सर ऐडविन आर्नल्ड जैसे कई अंग्रेज इतिहासकारों ने यह लिखा है, ''यदि महाराज वह औषध खा लेते तो अवश्यमेव बच जाते। केवल यही नहीं वरन् यह भी सम्भव है कि नीरोग होकर संतान भी उत्पन्न कर सकते और इस प्रकार यह हिन्दू राज्य विनाश को प्राप्त होने से बच जाता।'' परन्तु शायद भगवान की यह इच्छा न थी। उसी समय मेजर ऐलिस के सामने महाराजा ने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मैलकम हेली को एक और पत्र लिखाया, जिसमें अपने भेजे हुए पत्र के सिलसिले में निम्नलिखित बातों पर विशेष रूपा से जोर दिया।

''सन 1817 में झांसी राज्य के पूर्वज राजा रामचन्द्रराव जी से अंग्रेजी सरकार ने जो प्रतिज्ञापत्र किया था, उसमें स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया या था कि झांसी राज्य और अंग्रेजी शासन की मित्रता दृढ़ नीवों पर स्थापित करने के अभिप्राय से बरतानिया सरकार राजा रामचन्द्र राव जी से यह प्रण करती है कि वह उसके उत्तराधिकारियों तथा उन उत्तराधिकारियों को वंश परम्परा से उन सब प्रान्तों का शासक मानती है, जो बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पहले राजा शिवराव भाऊ जी के शासन में थे, ओर जो उस समय झांसी राज्य में सम्मिलित समझे जाते थे। साथ ही इसके, अंग्रेज सरकार यह भी प्रण करती है कि राजा रामचन्द्रराव जी के उत्तराधिकारी उस समस्त प्रदेश के स्वतंत्र स्वामी रहेंगे।''

यह पत्र मेजर ऐलिस के हवाले करके महाराजा गंगाधरराव के चित्त पर से एक बड़ा भारी बोझ सा उतर गया। कारण कि उन्हें इस बात का पूरा–पूरा विश्वास हो गया था कि उनकी आरे उनके पूज्य पुरखाओं की समस्त वंश परम्परा से की हुई समस्त सेवाओं का पूरा पूरा ध्यान रखकर, अंग्रेजी सरकार उनकी इस अंतिम प्रार्थना

को कदापि न ठुकराएगी और अपने उक्त पवित्र संधि पत्र की धाराओं की पूर्ति तथा पालना में झांसी का राज्य परम्परा से सब प्रकार चिरकाल तक उनके ही नियत किए उत्तराधिकारियों के अधीन बना रहेगा।

किन्तु शोक! महाशोक! डनके नेत्र बन्द होते ही कलकत्ता के देवता और उसके पुजारियों की नीयत बदल गई, जिसका कारण अंग्रेजी इतिहासकार मिस्टर डब्ल्यू एम. टोरैंस के शब्दों में यह था, ''भारतीय साम्राज्य की जड़ें अब इतनी सुदृढ़ हो गई थीं कि उन्हें अब किसी भी स्वमिभक्त शुभचिन्तक की सेवा आवश्यक अनुभव नहीं होती थी। अतः अब वे उनकी प्रत्येक सेवा की बड़ी सुगमता तथा निर्भयता के साथ अवहेलना करते तोते के सामन अपनी आंखें फेर सकते थे।

स्वर्गवास पश्चात्

21 नवम्बर, सन् 1853 का वह दुर्दिन भी आ ही पहुंचा, जिसका इतने दिनों से भय लग रहा था। शोक व्याधि व्यथित रोगी महाराज का निर्बल शरीर धीरे–धीरे ठंडा पड़ने लगा, श्वास प्रश्वास का कष्ट क्षण–क्षण बढ़ने लगा, विचार तथा ज्ञान शक्तियां लोप होने लगीं, आंखें पथरा गई, नाड़ी तथा हृदय की गति ठहर गई। कोई भी औषधि कण्ठ के नीचे न उतरी। राजमहल तो क्या, सारे नगर में हाहाकार मच गया। महादुःखिनी महारानी लक्ष्मीबाई के तो शीश पर दुःख, शोक तथा विपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा। उनके देखते ही देखते, उनके परमपूज्य प्राणपति, प्राणनाथ, प्राणेश्वर सदा के लिए उनसे बिछुड़ गए।[25] वे दुर्दैव ग्रसित अबला इस कृतघ्न, स्वार्थी, पापमय असार संसार में उसकी कठोर से कठोर और अत्याचारी से अत्याचारी, दुर्दमनीय शक्तियों का सामना करने के लिए अकेली ही रह गई। इसके साथ ही एक विशाल राज्य तथा उसके अल्पायु उत्तराधिकारी के लिए लालन पालन तथा रक्षण का भारी बोझ संभालने के लिए लाखों राजभक्त प्रजाजनों और सहस्त्रों नौकर चाकरों और कर्मचारियों तथा सम्बन्धियों के होते हुए भी वे निस्सहास सी रह गई।

झांसी नगर के असंख्य नर नारी, नंगे सिर, नंगे पैर, आंसू बहाते, छाती पीटते और हाहाकार करते सर्वप्रिय महाराजा गंगाधरराव के विमान के पीछे पीछे श्मशान भूमि तक गए। कारण, प्रत्येक मनुष्य का – चाहे वह कोई बड़े से बड़े राजा महाराजा, विस्तृत देश के विशाल सिंहासन का अधिपति हो या कंगाल से कंगाल दरिद्र भिखारी अंतिम स्थान श्मसान या कब्रिस्तान के सिवाय और कोई नहीं। केवल यहीं तक उसके प्रेमी और सच्चे से सच्चे मित्र, संबंधी, शुभचिन्तक, हितैषी, सेवक, सहायक आदि सब उसका साथ दे सकते हैं। इससे एक पग भी आगे, उसके साथ जाने की शक्ति किसी में नहीं।

अंग्रेजी राज्य के स्थानीय प्रतिनिधि मेजर ऐलिस, कप्तान मारटिन और अंग्रेजी पैदल सेना तथा रिसाले के अन्य अफसर तथा सैनिक भी अपने अपने काले मातमी वस्त्रों में, शोक की साक्षात् मूर्ति बने विमान के साथ साथ थे और इस दारूण दुःख के समय सब प्रकार अपनी सज्जनता तथा सहृदयता प्रकट कर रहे थे।

महाराज के अंतिम संस्कार से निबटकर भी मेजर ऐलिस और उसके साथी प्रायः सभी बड़े बड़े अफसरों ने महल में पहुंचकर, महारानी लक्ष्मीबाई जी से सब प्रकार सहानुभूति दर्शाई ओर उन्हें धैर्य दिलाया। फिर दूसरे अफसर तो अपनी–अपनी कोठियों की ओर चले गए, किन्तु मेजर ऐलिस सीधे राजकोष में पहुंचे, जो दुर्ग के अन्दर ही एक बड़े सुदृढ़ और सुरक्षित भवन में, बड़े चौकी पहरे में था। वहां पहुंचकर उन्होंने सबसे पहले राजकोष में संग्रहित धनराशि की जांच पड़ताल की। उस समय कोष में 2,45,768 रूपाये वर्तमान में थे। मेजर साहब ने राज्य के कोषाध्यक्ष पण्डित ज्वालाप्रसाद के सामने सब

थैलियों को नियमपूर्वक बक्सों में बन्द करवाकर तालों पर मोहर लगवा दी। फिर राज्य भण्डार के सभी दूसरे कमरों में रखे हुए बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा अन्य द्रव्यों की भी खूब जांच पड़ताल करके उनकी एक तालिका बनवाई और कमरों में ताले डालकर उन पर मोहरें लगवा दीं। तत्पश्चात् इस सब धनराशि की रक्षा के लिए ग्वालियर राज्य की कटिंजैंट सेना की 9 वीं पलटन के प्रायः डेढ़ सौ सिपाहियों और अफसरों का वहां पहरा लगा दिया।

राज्य भण्डार तथा कोष रक्षा की उनकी यह उग्रता और दक्षता देखकर सबने यही समझा कि यह सब कार्य केवल इसलिए किया जा रहा है कि महाराज गंगाधरराव के स्वर्गवास से दुःखग्रसित वियोगिनी महारानी के इस प्रकार महाशोकातुर होने के कारण, किसी बदनीयत सरदार अथवा कर्मचारी की उसमें हस्तक्षेप करने या किसी बहुमूल्य पदार्थ पर अनुचित रूपा से अपना अधिकार जमाने का अवसर न मिले।

महाराज का देहान्त हो जाने पर झांसी राज्य में सब प्रकार से पूर्ण शांति रही और इस शोक तथा दुःसह दुख सन्ताप में डूबी हुई रियासत में कहीं भी किसी प्रकार से कोई अशांति अथवा उपद्रव न होने पाया। परन्तु वास्तव में अंग्रेजों की ओर से इस सब देखभाल और प्रबन्ध का गुप्त आशय कुछ और ही था, जो अगले पृष्ठों में स्पष्टतया प्रकट हो जाएगा। इन सब कामों से निवृत्त होते ही जब मेजर साहब अपनी कोठी में पहुंचे तो सबसे पहला काम जो उन्होंने किया वह यह था कि बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मैलकम हेली को महाराज गंगाधरराव के स्वर्गवास का समाचार भेजने के साथ ही साथ उन्होंने अपने इस समस्त कार्य व्यवहार की भी एक विस्तृत रिपोर्ट उन्हें लिख भेजी।

मेजर मैलकम भी महाराज गंगाधर के असाध्य रोग का समाचार पाकर उनके देहान्त से पहले ही भारत सरकार के विदेशी विभाग के उच्च कर्मचारियों द्वारा गर्वनर जनरल को महाराज के इस कठिन रोग की सूचना दे चुके थे। अब मेजर ऐलिस से महाराज के स्वर्गवास का समाचार पाकर उन्होंने गवर्नर जनरल की सेवा में जो पत्र भेजा, उसका सारांश यह था

''मुझे श्रीमान को यह समाचार देते हुए महान दुःख होता है कि गत 21 नवम्बर को झांसी के महाराजा गंगाधरराव जी का देहान्त हो गया। परमात्मा उनकी आत्मा का कल्याण करें।[26]

''श्रीमान को विदित हो कि स्वर्गवासी महाराज ने अपनी मृत्यु से एक दिन पहले ही अपने राज्य वंश के पांच वर्षीय बालक को गोद लेकर उसका नाम दामोदर गंगाधरराव रख दिया है, यद्यपि उन्होंने इस बालक को अपना पोता प्रकट किया है परन्तु मुझे यह ज्ञात हुआ कि यह बालक महाराजा के पूर्वज राजा रघुनाथराव की पांचवी पीढ़ी से है। अतः अंग्रेजी रीति नीति से महाराज का चचेरा भाई सिद्ध होता है।

''इस पत्र के साथ ही मैं ये सब पत्र भी भेज रहा हूँ जो मेरे सहायक मेजर ऐलिस ने मुझे इस सम्बन्ध में लिखे हैं। उनमें उन्होंने महाराज के बीमारी के दिनों में उनसे अपनी मुलाकातों और उनकी शोक भरी मृत्यु का सब वृतान्त सविस्तार लेखबद्ध किया है। साथ ही इनके, वह प्रार्थना पत्र भी भेजा जाता है, जो स्वर्गीय महाराज ने इस दत्तक विधान के सम्बन्ध में भेजा है। आशा है, श्रीमान इन सब पर पूरा–पूरा विचार करेंगें।

''इस दत्तक विधान के सम्बन्ध में, जहां तक मैं समझता हूं, स्वर्गीय महाराज ने बड़ी चालाकी से काम लिया है। मेरा विचार है कि झांसी की समस्त प्रजा महाराज से यह आशा रखती थी कि वे अंग्रेज सरकार से प्रार्थना करेंगे कि उनके देहान्त के पश्चात् महारानी लक्ष्मीबाई को उनकी रियासत तथा उनकी सब सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी निश्चित किया जाए। अतः सम्भव है कि महाराज को अपनी मृत्यु से एक दिन पहले

इस प्रकार एक बच्चे को अपना दत्तक मानते हुए देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ हो।

''यदि यह सत्य है तो मैं बड़े जोर से यह कह सकता हूँ कि महाराज ने भली भॉति यह समझ लिया था कि झांसी के सूबेदार राजा शिवराव भाऊ के वंश से, जिनके साथ अंग्रेज सरकार ने सबसे पहले सन्धि विधान किया था, अब कोई उत्तराधिकारी नहीं और न उनके अपने ही कुल में कोई उचित योग्य उत्तराधिकारी या निकटवर्ती सम्बन्धी रह गया है। इस आपत्ति के विचार से ही महाराज ने इस प्रकार अचानक ही अपनी मृत्यु से ठीक एक दिन पहले, आनन्दराव नामक इस अल्पायु बालक को गोद में ले लिया है।

''श्रीमान के विचारार्थ झांसी के स्वर्गवासी महाराज के कुल का एक वंशतरू (शजरा) भी भेज रहा हूं जिससे श्रीमान पर यह प्रकट हो जाएगा कि यह गोद लिया हुआ बालक महाराज के पूर्वज राजा रघुनाथराव प्रथम के वंश से है। गत दो तारीख को मैंने अपने सहायक मेजर ऐलिस को झांसी राज्य के प्रबन्ध सम्बन्धी जो पत्र भेजा था, उसकी नकल दो तारीख को ही भारत सरकार के सूचनार्थ भेज दी गई थी, उसमें उपर्युक्त मेजर साहब को स्पष्ट शब्दों में यह लिख दिया गया था कि जब तक भारत सरकार झांसी राज्य के भावी प्रबन्ध में कोई निश्चय न करे, तब तक स्वर्गीय महाराज के इस दत्तक विधान पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाएगा और इस मध्यकाल में, हमें ही भारत सरकार की ओर से उसके प्रतिनिधि रूप, राज्य का सब प्रबन्ध चलाना पड़ेगा। इस संकेत के अनुसार ही ऐलिस साहब उचित रूपा से सब कार्य कर रहे हैं।

''श्रीमान के विचारार्थ कुछ ऐसे पत्र भी भेज रहा हूँ जिनसे श्रीमान को अंग्रेजी सरकार और झांसी राज्य के सब पारस्परिक सम्बन्धों का स्मरण हो जाएगा और श्रीमान उन्हें देखते ही यह निर्णय कर सकेंगे कि इस प्रकार स्वर्गीय महाराज को अपने राज्य का किसी को उत्तराधिकारी बनाने का कोई अधिकार प्राप्त है, अथवा नहीं।[27]

''श्रीमान! बुन्देलखण्ड से हम अंग्रेजों का सबसे पहला सम्बन्ध सन् 1804 में स्थापित हुआ। उस समय झांसी के सूबेदार शिवराव भाऊ, पेशवा के नौकर और मण्डलीक थे। यही देखकर अंग्रेजों ने उनके साथ यह सन्धि पत्र किया था। उस समय भी अंग्रेजों की यह कृपा ही थी कि उन्होंने अपने पुराने सन्धि पत्र के विचार से झांसी राज्य के सभी अधिकार शिवराव भाऊ के पोते रामचन्द्रराव को वंश परम्परा के लिए लिख दिए और सन् 1832 ई. में उन्हें 'सूबेदार' के बदले राजा की पदवी से सम्मानित कर दिया।

''सन् 1838 में जब इन राजा रामचन्द्रराव का देहान्त हुआ, तो इनके अपनी कोई संतान नहीं थी। अतः जहां तक मुझे याद है, उस समय अंग्रेज सरकार ने झांसी राज्य को अपने शासनाधिकार में लेने का कुछ विचार किया था। परन्तु फिर न्यायप्रिय सरकार ने यह देखा कि शिवराव भाऊ के दो पुत्र रघुनाथराव तथा गंगाधरराव अभी जीवित हैं। अतः दयालु सरकार ने अपना यह विचार बदल लिया और दोनों को ही झांसी की राजगददी पर क्रमशः बिठा दिया।[28] परन्तु अब, जबकि दुर्भाग्यवश गंगाधरराव भी निःसंतान ही परलोक सिधार गए हैं तो न्याय की दृष्टि से इस वंश का सदा के लिए अंत हो चुका है।

''इनके अतिरिक्त एक बात और भी मैं श्रीमान के समक्ष रख देना चाहता हूँ, वह यह कि, सन् 1835 ई. में जब राजा रामचन्द्रराव का देहान्त हुआ, तब राजा रामचन्द्रराव के दत्तक पुत्र और उनकी रानी ने भी अपना–अपना अधिकार जताया था, किन्तु सरकार ने इन दोनों को ही अनाधिकारी समझा। मेरे विचार में यही उचित तथा न्यायसंगत भी था। ''वैसे भी झांसी राज्य पर चिरकाल से अंग्रेजों का ही शासन है। अब तक उसका समस्त प्रबंध मेजर ऐलिस बड़ी उत्तमता

से करते रहे हैं। इस अवस्था में यदि मेरी उपर्युक्त प्रार्थना पर विचार करके सरकार झांसी राज्य को अपने शासन में ले ले, तो उसके निकटस्थ ग्वालियर राज्य के समान ही, इसका प्रबन्ध करने में भी कोई अड़चन हमारे सामने न आएगी।

''यदि श्रीमान का यही निर्णय हो तो राज्य का समस्त प्रबन्ध भी मैं ही करूं, तो भी मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी, वरन् मैं इसे अपना परम सौभाग्य ही समझूंगा। किन्तु प्रश्न केवल यही रह जाता है कि मुझे और मेरे सहायक मेजर ऐलिस को 'माल विभाग' का कुछ अनुभव नहीं। इसके अतिरिक्त मुझे ग्वालियर तथा बुन्देलखण्ड में, बार–बार सिर उठाने वाले झगड़ों का निर्णय करने के लिए, प्रायः दौरे पर ही रहना पड़ता है।

संक्षेप में, इस प्रकार मेजर मैलकम हेली अभागे झांसी राज्य के भविष्य का अपनी ओर से पूरा–पूरा निर्णय करके, बिना किसी लड़ाई भिड़ाई के ही झांसी राज्य को बिल्कुल शांति से हड़प कर जाने के सुख स्वप्न देखने लगे और इन सुख स्वप्नों की पूर्ति के लिए अपने उच्च अधिकारियों की स्वीकृति की प्रतीक्षा करने लगे। इसी नीयत से उन्होंने ग्वालियर कंटिंजैट सेना की 9 वीं पलटन की एक टुकड़ी और बंगाल नेटिव इन्फैंटरी नामक एक पूरी पलटन की छावनी भी झांसी में डलवा दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने झांसी तथा क्रेरा के दुर्गों की रक्षा के लिए ब्रिगेडियर पारसंज से चार–चार पलटनें और भी मंगवा लीं।

लक्ष्मीबाई की चिन्तायें

इधर तो पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मैलकम हेली अभाग झांसी राज्य को अंग्रेजी सरकार के शासनाधिकार में लाने के लिए जाल फैला रहे थे, उधर पति पुत्र शोक संन्तृप्ता, दुःखिनी महारानी लक्ष्मीबाई अपने सर्वथोचित प्रार्थना पत्र की स्वीकृति आने की बड़ी ही व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही थीं और एक एक दिन गिन–गिनकर काट रही थी। कारण, अपने स्वाभाविक भोलेपन तथा विश्वासी प्रकृति के वशीभूत होकर, मेजर मैलकम हेली की संरक्षकोचित सहायता पर वे पूरा पूरा भरोसा रखती थीं और उन्हें अपने दत्तक विधान के सर्वथा न्यायसंगत होने का भी पूर्ण विश्वास था।[30]

जब आए दिन की प्रतीक्षा की यह वेदना उन्हें असहाय हो गई और महाराजा के देहान्त को भी कई सप्ताह बीत गए, तो उन्होंने एक दिन घबराकर अपने पूज्य पिता मोरोपन्त जी को बुलाया और उनसे कहने लगीं, ''पिताजी! स्वर्गीय महाराज के प्रार्थनापत्र पर अभी तक कुछ भी उत्तर नहीं आया। न जाने क्या कारण है?'' मोरोपन्त पुत्री! सरकार के कामों में प्रायः ऐसी ही देर हो जाया करती है, अतः चिन्ता की कोई बात नहीं। मैंने अभी कुछ ही दिन हुए, मेजर साहब से पूछा था, उन्होंने यही कहा कि अभी कलकत्ता से कोई उत्तर नहीं आया। तुम जानो, दूर की बात ठहरी। फिर सरकारी दरबार के कार्य भी धीरे धीरे होते हैं। बेटी, घबराओ मत! स्हज पके सो मीठा होय की लोकोक्ति क्या तुम भूल गई?

महारानी वह तो सब ठीक है पिताजी! ठतने दिनो से हमारे सभी राजकोष तथा भंडारों पर अंग्रेजों के ताले भी पड़े हुए हैं। भला इस प्रकार काम कैसे चल सकता है ? मंत्री जी को तो बुलवाइए। उनसे ही कुछ सलाह करें कि अब क्या करना चाहिए?

मंत्री जी आए। देर तक परामर्श होता रहा। अन्त में यही निश्चित हुआ कि लाट साहब की सेवा में एक और प्रार्थनापत्र भेजकर पहले पत्र की याद दिलाई जाए और उसका शीघ्र उत्तर मांगा जाए। फिर बड़े सोच विचार से एक प्रार्थना पत्र तैया किया गया, जिसका सार यह था :

''श्रीमान जी! हमारे झांसी राज्य के पत्रों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस प्रान्त में

अंग्रेजी शासन स्थापित होने से पहले मेरे पूज्य श्वसुरदेव श्रीमान शिवराव भाऊ जी अंग्रेजी सरकार को सब प्रकार पूरी पूरी सहायता देते रहे हैं। और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि उनकी उसी सहायता के परिणामस्वरूपा, अंग्रेजी सरकार की भी हम पर अब तक सब प्रकार कृपादृष्टि रही है। साथ ही इसके, श्रीमान को यह भी स्मरण होगा कि सन् 1842 ई. में मेरे स्वर्गीय पतिदेव महाराजा गंगाधरराव जी के साथ कर्नल स्लीमन साहब ने जो सन्धि पत्र किया था, उसमें भी वे शर्तें रद्द नहीं की गई थीं, जो 1817 में हमारे पूर्वज राजा रामचन्द्रराव जी ने निश्चित हुई थी। वरन् उस नए सन्धि पत्र के समय भी मेरे पतिदेव को यह विश्वास दिलाया था कि भविष्य में भी इन शर्तों का उसी प्रकार पालन किया जाएगा, जैसा कि उस समय तक होता रहा है। उन्हें यह भी निश्चय दिलाया गया था कि इन शर्तों से प्राप्त होने वाले समस्त अधिकारों से पूरा–पूरा लाभ उठाने के स्वत्त्व भी झांसी नरेश को सदा प्राप्त रहेंगें।

''यही कारण है कि हमारे भारतवर्ष में दत्तक लिए जाने का विधान किसी प्रकार भी न्याय अथवा धर्म के विपरीत नहीं समझा जाता, और हममें जिन सद्गृहस्थ दम्पत्ति के कोई औरत पुत्र नहीं नहीं होता, वह किसी अन्य निकट सम्बन्धी के पुत्र को गोद ले लिया करते हैं, और वही गोद लिया दत्तक पुत्र ही उन्हें पिण्डदान करके उनकी समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है।''[31] इस प्रकार हमारे आर्यधर्म ने भी हिन्दू समाज को इसकी पूरी पूरी आज्ञा दे रखी है और इसमें कभी किसी को कोई आपत्ति नहीं होती।

''श्रीमान जी! हिन्दू धर्मशास्त्र की इसी सर्वमान्य आज्ञा को शिरोधार्य कर, मेरे स्वर्गीय पतिदेव, श्रीमान महाराजा गंगाधरराव जी ने, जब यह देखा कि हम दोनों के दुर्भाग्य से हमारे कोई भी औरस संतान नहीं, और उनका जीवन दीप भी अब शीघ्र ही बुझने वाला है, तो उन्होंने अपना वंश स्थिर रखने की इच्छा से और मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग प्राप्ति की सुखमय कामना को अपने हृदय में स्थान देकर, किसी बालक को गोद लने का निश्चय कर लिया।

परिणामतः 19 नवम्बर को जब वे अपने जीवन से पूर्णतः निराश हो गए, तो उन्होंने अपनी इस एकमात्र अभिलाषा की पूर्ति के लिए मुझे तथा अपने राजमंत्री श्री नरसिंह जी अप्पा, लाला लाहौरीमल और लाला तटीचन्द आदि कई सुप्रतिष्ठित सेठों, साहूकारों, राजकर्मचारियों एवं अन्य सम्मानित सज्जनों को अपनी मृत्यु शय्या के समीप बुलाकर उन सबके सामने अपनी यह अन्तिम इच्छा प्रकट कर दी।

''अन्ततः अगले ही दिन सबकी सहानुभूति तथा सर्वसम्मति से स्वर्गीय महाराज गंगाधरराव जी ने उस बालक को हिन्दू धर्मशास्त्र की पूर्ण रीति नीति के अनुसार, नियमपूर्वक अपना दत्तक पुत्र बना लिया।

''झांसी के प्रसिद्ध राजपण्डित तथा पुरोहित पं. विनायकराव जी ने इस शुभ संस्कार का संकल्प कराया और आनन्दराव के पूज्य पिता वासुदेव ने अपने पुत्र को शास्त्र विधि के अनुसार महाराज की गोद में दे दिया। इस संस्कार के समय बुन्देलखण्ड के सहायक पोलिटिकल एजेण्ट मेजर ऐलिस, और कप्तान मारटिन भी दरबार में विराजमान थे। उस समय महाराज ने स्वयं अपने हाथ से अंग्रेजी सरकार के नाम एक पत्र लिखकर, सरकार से यह प्रार्थना की कि सरकार बहादुर उनके इस दत्तक विधान को स्वीकृत कर लें और फिर यह प्रार्थनापत्र मेजर ऐलिस के हवाले कर दिया गया।

''मेजर साहब ने भी बड़ी कृपापूर्वक उन्हें यह विश्वास दिलाया कि वे इस दत्तक विधान को अंग्रेजी सरकार से स्वीकार करवाकर झांसी राज्य के शासकों के वंश तरू को सब प्रकार से सुरक्षित रखेंगें और उसकी जड़ों को पुष्ट करते

रहेगें। उससे अगले ही दिन अर्थात् 21 नवम्बर को मेरे प्राणपति देवता महाराजा गंगाधरराव जी ने पूर्ण सुख तथा आत्मिक शांति से प्राण त्याग कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। उनका अंतिम संस्कार पुत्र आनन्दराव ने ही यथाविधि, शास्त्रानुसार पूर्ण रीति तथा मर्यादा से किया, जिसका नाम इस दत्तक संस्कार के उपरांत दामोदर गंगाधर राव हो गया है।

''श्रीमान जी, अब मेरा हाथ जोड़कर विन्रम निवेदन है कि जिस दत्तक पुत्र को अपना मानकर, अंग्रेजी सरकार के सच्चे शुभचिन्तक और स्नेही मित्र स्वर्गीय महाराजा गंगाधरराव जी ने, आपकी तथा अंग्रेजी सरकार की छत्रछाया में पूर्ण शांति और सच्चे विश्वास के साथ सौंपकर यह नश्वर शरीर त्याग किया है, उसके स्वत्त्वों की सब प्रकार से रक्षा करना तथा उस पर पूर्ण दयादृष्टि रखना आप भी अपना तथा अंग्रेजी सरकार का सबसे उत्तम तथा प्रमुख कर्तव्य ही नहीं, वरन् सच्ची राजनीति समझें।

''इसके साथ ही, यदि आप मुझे क्षमा करें, तो मैं श्रीमान जी का ध्यान अपने निकटवर्ती दतिया राज्य के राजा परीक्षतराव, जालौन के नरेश राजा बालीराव तथा ओरछा नृपति राजा तेजसिंह के उदाहरणों की ओर भी दिलाकर यह प्रार्थना करना चाहती हूं कि जिस प्रकार दयालु सरकार बहादुर ने इन राजाओं के दत्तक पुत्रों को स्वीकार कर लिया है, वैसे ही मेरे स्वर्गीय पतिदेव के दत्तक पुत्र को भी स्वीकार किया जाए।

महारानी लक्ष्मीबाई जी के इस सर्वथा न्यायसंगत तथा युक्तिमूलक प्रार्थना पत्र की पुष्टि में मेजर ऐलिस ने भी बड़ी जबरदस्त सिफारिश की। कारण, इससे पहले भी अपनी 24 दिसम्बर की चिटठी में, वे बड़े स्पष्ट शब्दों में लिख चुके थे, ''झांसी राज्य की समाप्ति अथवा उसके दत्तक अधिकार की अस्वीकृति, कोर्ट आफ डारेक्टर्ज के उस पत्र की 16–27 की धाराओं के सर्वथा विरूद्ध होगी, जो उपर्युक्त कोर्ट ने 20 मार्च, 1936 ई. को झांसी राज्य के नाम भेजा है। अतः मेरे विचार में, यदि गवर्नमेंट इस दत्तक विधान को अस्वीकार करके झांसी राज्य का अन्त कर देगी, तो वह अपनी विशाल राजनीति को अपने हाथों आप ही रक्तपात करेगी।''[32]

परन्तु कहा जाता है कि यह विचार मेजर मैलकम हेली के निजी भावों के विरूद्ध होने के कारण मेजर का यह पत्र चिरकाल तक मेजर हेली के दफ्तर में ही दबा पड़ा रहा, अतः इस पर यथासमय विचार न हो सका। कुछ गम्भीर विचारवान ऐतिहासिकों और नीतिकुशल लेखकों का विचार है कि मेजर हेली के इस दुराग्रह का कारण यह था कि उस समय उत्तरी भारत में, आगरा से सागर के मध्वर्ती प्रान्त में, केवल झांसी ही एक ऐसा केन्द्रीय स्थान था जहां से समय आ पड़ने पर, ग्वालियर के सिन्धिया राजा को ही नहीं, वरन् अन्य कई राज्यों के नरेशों को भी बड़ी सुगमता से परास्त किया जा सकता था।

इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर मेजर हैली ने इस दत्तक पुत्र के निषेध की क्रूर कूटनीति का आश्रय लेकर झांसी राज्य को इस प्रकार हड़पकर जाने की सम्मति दी थी। फिर आगे कलकत्ता तथा लन्दन में तो उनसे भी कई दरजे बढ़े बढ़े सर्वग्राही परम लोभियों का राज्य था, वे भला एक बार यह अमोघ अस्त्र हाथ आ जाने पर, इसके बार–बार प्रयोग में कोई कोर कसर रखने वाले कब थे?

नई परेशानी

इधर तो स्वर्गीय महाराजा गंगाधरराव के दत्तक विधान की स्वीकृति खटाई में पड़ गई थी और उसमें जितनी भी देर होती जाती थी, उतनी ही पति पुत्र वियोगिनी सती महारानी लक्ष्मीबाई जी की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उधर इस सम्बन्ध में एक और नया झंझट उत्पन्न हो गया। वह यह कि महाराजा गंगाधरराव के पूर्वजों के प्राचीन उद्गम स्थान खानदेश में अभी तक उनके

कुछ दूर पार के सम्बन्धी वर्तमान थे। उन्हीं में सदाशिव राव नामक एक व्यक्ति, महाराज के निःसंतान परलोक सिधार जाने का समाचार सुनकर झांसी राज्य का दावेदार बन बैठा और उसने इस आशय का एक प्रार्थना पत्र भी मेजर मैलकम हेली की सेवा में भेज दिया।

इससे मेजर मैलकम हेली की को महारानी लक्ष्मीबाई के विरोध का एक और शस्त्र हाथ आ गया और उन्होंने अपनी उपर्युक्त 21 नवम्बर की रिपोर्ट के सिलसिले में ही 13 दिसम्बर को लोर्ड साहब की सेवा यह लिख भेजा, ''यदि सरकार झांसी का राजसिंहासन स्थिर ही रखना चाहे और महाराजा के वशं के ही उत्तराधिकारी को यह राज्य देना चाहे, तो यह सदाशिवराव उनका विशेष रूपा से निकट सम्बन्धी और झांसी राज्य का योग्यतर उत्तराधिकारी जान पड़ता है।''

इससे यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि मेजर हेली किसी विशेष कारण से महाराजा गंगाधरराव अथवा महारानी लक्ष्मीबाई जी से रूष्ट थे और इसीलिए वे उनको राज्य से वंचित करने के लिए दत्तक विधान को अस्वीकृत करके ही, उनके प्रति अपने क्रोध को शांत करना चाहते थे। अतः अब इस इच्छापूर्ति के लिए, यह एक नया साधन और भी उनके हाथ आ गया, तो इसे भी उन्होंने अपने हाथ से खोना पसन्द नहीं किया और लगे हाथ सदाशिवराव की भी सिफारिश झांसी की राजगद्दी के लिए कर दी।

किन्तु उस समय लार्ड डलहौजी की दृष्टि में, मेजर हेली की इस शिफारिश का भी कुछ मूल्य नहीं पड़ा। कारण, उसकी अपनी कूटनीति इससे भी बड़ी थी, जिस पर यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना अनुचित न होगा।

भारत के इतिहास से कुछ साधारण सी भी रूचि रखने वालों को यह भलीभांति विदित् होगा कि प्रथम गर्वनर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज के घोर अत्याचार और काली करतूतों के विरूद्ध बरतानिया शासक दल के विरोधी उसके शासन दोष दिखाने के लिए सदैव अवसर ढूंढ़ते रहते थे। अतः उन्होंने लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति और उनके दुष्कार्यों के विरूद्ध इंग्लैण्ड में जो कोलाहल मचाया था और उस समय के प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति मिस्टर ऐडमण्ड वर्क ने हेस्टिंग्ज की कुकृतियों का जो भण्डाफोड़ किया था, उससे घबराकर शासक दल अपनी भारतीय राजनीति के संबंध में यह घोषणा कर देने पर विवश हो गया था कि वे भारत में अपना शासन फैलाना या वहां के किसी भी प्रान्त पर अपना अधिकार जमाना नहीं चाहते, क्योंकि ऐसे कुकृत्य अंग्रेजी सरकार की राजनीति, उसकी इच्छा तथा न्यायप्रियता के लिए उसकी ख्याति के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

परन्तु शासक दल अपनी इस प्रतिष्ठा पर छः सात वर्ष से अधिक न टिक सका और सन 1790 में ही लार्ड कार्नवालिस ने मैसूर नरेश सुलतान टीपू का आधा राज्य हड़प लिया। फिर 1799 में लार्ड बेलेजली उनके शेष आधे राज्य को भी डकार गए। इसके कुछ ही काल उपरान्त अवध के नवाब की भी बारी आ गई। तत्पश्चात् कर्नाटक राज्य को भी चट कर लिया गया और अपनी इस मनोरथ सिद्धि पर, सर्वग्राही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के महालोभी कर्णधारों के घरों में घी के दीपक जल उठे।

परन्तु साथ ही फिर किसी दुर्घटना के भय से उनका हृदय भी कांप उठा और उन्हें यह घोषणा करने में ही अपना कल्याण सूझा कि 'भविष्य के भारत में कम्पनी शासन को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न न किया जाए।' किन्तु फिर इससे कुछ ही वर्ष पीछे लार्ड मेयो ने नेपाल राज्य से युद्ध की छेड़छाड़ आरम्भ करके उसके एक बड़े भाग को हथिया लिया और उसके उपरांत आसाम, कुर्ग, सिन्ध, पंजाब आदि को भी क्रमशः हड़प लिया।

उन्हीं दिनों अर्थात् सन् 1848 में जब लार्ड डलहौजी ने शासन की डोर संभाली, तो प्रायः समस्त भारत में अंग्रेजों के पैर बड़ी सुदृढ़ता से जम चुके थे। परन्तु फिर भी अभी तक वे मुगल सम्राट के समान भारत सम्राट नहीं माने जाते थे। अब यह लालसा भी उनके मन में जाग उठी। उसकी पूर्ति के लिए ही उन्होंने अपनी गिद्ध दृष्टि इधर उधर दौड़ानी आरम्भ की और सभी प्रकार अपना उल्लू सीधा करते रहने का निश्चय कर लिया।

बस फिर क्या था, 'फूट फैलाओ और शासन करो' की दुर्नीति का अमोध चक्र चलना आरम्भ हो गयां सिक्किम, दार्जिलिंग, अरकाट, तंजौर, सम्बलपुर, नागपुर आदि कई छोटे छोटे दुर्बल राज्य इन दुर्नीत का शिकार होकर सदा के लिए अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठे। केवल यही नहीं, वरन् बड़ौदा, ग्वालियर, हैदराबाद जैसे बड़े बड़े और बलशाली राज्यों को भी, किसी न किसी रूपा में, अंग्रेजी गुलामी का जुआ अपने कन्धों पर रखना पड़ा। इसके कारण भारत भर में चारों ओर रोष तथा अशांति की एक ऐसी भयंकर लहर फैल गई, जिसने धीरे धीरे सन् 1857 के प्रलयंकारी विप्लव का रूद्र रूपा धारण कर लिया।

परन्तु इसका समस्त दायित्व लार्ड डलहौजी के सिर थोपना भी किसी प्रकार न्यायसंगत न होगा। कारण, वे भी तो अन्ततः कोई स्वेच्छाचारी और स्वाधीन शासन नहीं थे। उनके लिए भी तो कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के प्रत्येक संकेत पर नाचना और उसकी प्रसन्नता प्राप्ति के प्रयत्नों में दिन रात लगे रहना ही परम आवश्यक था और कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्ज की बागडोर थी उसके प्रधान मिस्टर हौबहाउस के हाथों में! उन्होंने शायद पहले ही लार्ड डलहौजी को यह सब कुछ सुझा बुझाकर भेजा था कि भविष्य में किसी भी राज्य के के राजा को यह आज्ञा न देना कि वह निःसंतान रह जाने पर किसी को अपना दत्तक पुत्र बनाकर अपने राजवंश को चालू रख सके।[33] उसके संकेत का पालन लार्ड डलहौजी तथा उनके सभी अधीनस्थ उच्च अफसरों का परम धर्म था यह तो स्वंयसिद्ध ही है।

मेजर ऐलिस की गणना शायद उच्च कर्मचारियों में न होने के कारण उन्हें इस रहस्य का कुछ ज्ञान न था, इसीलिए उन्होंने अपने उच्च अधिकारियों की इच्छा के विरूद्ध झांसी का यह दत्तक विधान स्वीकार किए जाने पर जोर दिया था। परन्तु इस पर यह भी प्रश्न उठ सकता है कि मेजर मैलकम हेली ने झांसी राज्य का अन्त कर दिये जाने के सम्बन्ध में जो सम्मति दी थी, क्या वह भी इसी गुप्त संकेत के आधार पर थी? यदि थी, तो उनसे यह भूल कैसे हुई कि उन्होंने अपनी 13 दिसम्बर को चिट्ठी में गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी से झांसी राज्य के इस नए दावेदार सदाशिवराव की सिफारिश कर डाली, जो अन्ततः जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, सर्वथा व्यर्थ तथा निष्प्रभाव सिद्ध हुई। इस प्रश्न का उत्तर यही हो सकता है कि मानस सागर में प्रतिक्षण अनेकानेक तरंगे उठती रहती हैं। इसे भी उन्हीं तरंगों में से एक तरंग समझ लीजिए।

परिणाम यह हुआ कि लार्ड डलहौजी ने फरवरी 1845 में अपनी लखनऊ यात्रा से कलकत्ता वापस पहुँचते ही, अपने विदेशी सचिव मिस्टर जी.पी. ग्राण्ट को झांसी राज्य के सब नए पुराने संधि पत्रों तथा दूसरे पत्रों की भारी भरकम मिलस कर पूरा–पूरा विचार करके, उन पर अपनी रिपोर्ट पेश करने आज्ञा दे दी।

गवर्नर जनरल का विष बुझा तीर

लार्ड डलहौजी के विदेशी सचिव मिस्टर ग्रण्ट बड़े पुराने घाघ थे। वे उड़ती चिड़िया पहचानने में बड़े कुशल तथा सिद्धहस्त समझे जाते थे। उन्होंने लार्ड डलहौजी की इच्छानुसार उसी दृष्टिकोण से समस्त पत्रों का अध्ययन आरम्भ कर दिया और कुछ ही दिनों में अपनी उस सारी खोज का

सारांश एक रिपोर्ट के रूप में लार्ड साहब के सामने रख दिया।

लार्ड डलहौजी ने इस रिपोर्ट पर पूर्ण विचार करके उसे अपने सहयोगी सहायकों की कौंसिल में पेश किया और सबने कई दिन तक उस पर विचार करके अन्त में सर्वसम्मति से अपना यह निर्णय लिख–''नवम्बर सन् 1853 ई. में झांसी राज्य के अंतिम राजा महाराज गंगाधरराव का देहान्त हो गया। उनककोई संतान नहीं थी, अतः उन्होंने अपनी मृत्यु से एक दिन पहले आनन्दराव नामक एक बालक को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी बना लिया। अब उनकी विधवा महारानी लक्ष्मीबाई यह प्रार्थना करती हैं कि अंग्रेजी सरकार भी इस दत्तक विधान को स्वीकार करके इस बालक को झांसी राज्य का उत्तराधिकारी मान ले।

''हमने उनके इस प्रार्थना पत्र पर विचार करते हुए झांसी राज्य के सम्बन्ध में इस रिपोर्ट को पढ़ा जिसमें मंत्री महोदय ने इस राज्य का सारा इतिहास संक्षिप्त रूपा में दिया है। उसमें हम पर यह स्पष्ट हो गया है कि झांसी राज्य और अंग्रेजी सरकार के सम्बन्ध क्या हैं।

''झांसी राज्य से अब तक जो भी पत्र व्यवहार होता रहा है, उसे अपने ध्यान में रखते हुए, हमें यह सम्मति प्रकट करने का पूरा–पूरा अधिकार है कि जो प्रान्त झांसी के स्वर्गीय महाराज के अधीन था, उसका प्रबन्ध अब किस प्रकार किया जाए। हमें झांसी राज्य से सम्बन्ध रखने वाले सभी पत्रों पर पूरा पूरा विचार करने के पश्चात् यही उचित जान पड़ता है कि, अंग्रेजी सरकार को इस वर्तमान अवस्था में इस राज्य पर अधिकार कर लेने का पूरा पूरा हक है। कारण, झांसी राज्य का इतिहास स्पष्ट शब्दों में यह प्रमाण दे रहा है कि सन् 1817 में शिवराव भाऊ और उसके उत्तराधिकारियों ने बाजीराव दूसरे पेशवा से जो राज्य प्राप्त किया था, उस पर अब तक उनका अधिकार स्थिर रखना, अंग्रेज सरकार की इच्छा और कृपा पर ही निर्भर था, परन्तु अब इसका रूपा कुछ और ही हो गया है।

''महाराज गंगाधरराव शिवराव भाऊ के ही पुत्र थे। इसीलिए अंग्रेज सरकार ने अपने स्वर्गीय मित्र की मित्रता का सम्मान करके उन्हें झांसी राज्य का अधिकार प्रदान कर दिया था। यदि उनकी कोई औरस सन्तान होती तो यह भी सम्भव था कि उसे भी अंग्रेज सरकार वह स्वत्त्व प्रदान कर देती किन्तु इस समय कोई ऐसी संतान वर्तमान नहीं, अतः हमारे विचार में यही उचित जान पड़ता है कि अब झांसी राज्य के समस्त शासन अधिकार अंग्रेज सरकार के हाथ में देना किसी प्रकार भी अनुचित और अन्यायसंगत न होगा।

''अभी पिछले दिनों टिहरी आदि राज्यों के संबंध में विचार करते हुए जब झांसी राज्य के भविष्य पर भी विचार किया गया, तो यही निर्णय हुआ कि लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर चार्ल्स मैटकाफ ने बुन्देलखण्ड की छोटी छोटी रियासतों के सम्बन्ध में जो नियम बनायें हैं और जिन्हें सन् 1817 में अंग्रेजी सरकार ने भी स्वीकार कर लिया है तथा जिन्हें 1846 में भारतीय अंग्रेजी शासन की आरे से कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्ज भी स्वीकार कर चुका है, उन्हें देखते हुए स्पष्ट जान पड़ता है कि अंग्रेज सरकार को सब प्रकार यह अधिकार प्राप्त है कि वह झांसी राज्य को रियासतों की तालिका से निकालकर अपने शासन में ले ले।

''इसके अतिरिक्त झांसी राज्य के पत्र देखने और उस राज्य के जन्मदाता शिवराव भाऊ से सं. 1804 ई. में जो प्रतिज्ञापत्र हुआ था, उस पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि झांसी राज्य सदा से ही अंग्रेजों के अधीन रहा और यह कभी भी स्वतंत्र तथा स्वाधीन नहीं रहा अर्थात् इसे टिहरी राज्य जितनी भी स्वतंत्रता कभी प्राप्त नहीं हुई।[33] अंग्रेजी सरकार ने शिवराव भाऊ से जो प्रतिज्ञापत्र किया था, उसमें यह स्पष्ट लिखा है कि झांसी का सूबेदार पेशवा के अधीन

है। स्वयं भाऊ साहब ने भी सन् 1803 ई में लार्ड लेक के नाम एक 'वाजिब–उल–अर्ज' में यह लिखा है कि 'हम पेशवा जी की आज्ञा के अनुसार झांसी प्रान्त के शासन की देखभाल करते रहे हैं।

''शिवराव भाऊ ने स्वयं इस शासन भार को अपने कन्धे से उतारते हुए, अंग्रेज सरकार से यह प्रार्थना की थी, कि हमारे साथ जो प्रतिज्ञापत्र हुआ है, उसके अनुसार हमारे पोते को झांसी की गददी दे दी जाए। ''उस समय सरकार ने उन्हें यही उत्तर दिया था, कि 'झांसी राज्य पेशवा के अधीन होने के कारण, हमें उनकी आज्ञा के बिना, झांसी का शासन बंश परम्परा से चलाने की आज्ञा देने का कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं।'

''इसी न्यायसंगत नीति के अधीन सन् 1815 ई. में भी अंग्रेज सरकार ने रामचन्द्रराव को स्वयं झांसी का शासनाधिकार देकर पेशवा का जी दुखाना और उनके राज्याधिकारों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। यद्यपि पेशवा ने सन् 1815 में अपने सारे प्रान्त का शासन भी तत्पश्चात् अंग्रेजों को दे दिया, और इस प्रकार वे सभी छोटी छोटी रियासतें भी, जो पेशवा के अधीन थीं, अंग्रेजों के हाथ आ गई, तो भी अंग्रेजों का अधिकार, वंश परम्परा से, स्वीकार नहीं किया। परन्तु उस समय अंग्रेज सरकार को झांसी राज्य पर पूरे पूरे अधिकार प्राप्त होने के कारण और शिवराव भाऊ से उनके सदैव गहरी मित्रता के सम्बन्ध रहने के कारण, अंग्रेज सरकार ने शिवराव भाऊ के पोते, रामचन्द्रराव को कुछ शर्तों के अधीन झांसी की गद्दी वंश परम्परा के लिए लिख दी।

''इस प्रकार यद्यपि सन् 1832 ई. तक झांसी के सूबेदारों को यह गद्दी वंश परम्परा से मिलती चली गई, किन्तु फिर भी उनका दर्जा सदा छोटा ही रहा, और वे कभी राजा के सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकें।

''सन् 1835 ई. में रामचन्द्रराव का देहान्त हो गया। उन्होंने भी कोई और संतान न होने के कारण, अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व, एक बालक को गोद ले लिया। परन्तु सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया और उसके पश्चात् झांसी की गद्दी उनके चाचा रघुनाथराव को दे दी।

''सन् 1839 ई. तक रघुनाथराव राज्य करते रहे। तत्पश्चात् यह राज्य उनके छोटे भाई गंगाधरराव को मिला, जिनका अभी पिछले दिनों देहान्त हुआ है और जिनकी उत्तराधिकारिता का यह झगड़ा है।

''अब न तो गंगाधरराव की ही काई औरस संतान है और न रामचन्द्रराव की ही, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने वंश परम्परा के लिए झांसी की गद्दी लिख दी थी। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि इस राज्य को वंश परम्परा से चलाने वाला जब कोई भी उत्तराधिकारी नहीं, तो इसे अंग्रेजी शासन में ले लेना ही परमोचित है।

''महारानी लक्ष्मीबाई ने दत्तक बालक की उत्तराधिकारिता स्वीकार किए जाने की प्रार्थना करते हुए टिहरी, दतिया, जालौन आदि रियासतों के उदाहरण दिए हैं। परन्तु उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि टिहरी और दतिया स्वाधीन रियासतें हैं। उनके साथ झांसी जैसे अधीन राज्य की कोई भी तुलना नहीं हो सकती। कारण, स्वाधीन राजाओं और अधीन रईसों के लिए नियम अलग अलग हैं।[34]

''हां, जालौन की बात अवश्य इनसे पृथक है। वह भी अवश्य एक अधीन रियासत है। परन्तु उसे अंग्रेजी सरकार ने किसी विशेष प्रेम अथवा राजनीति के विचार से बालक गोद लेने की आज्ञा दे दी है। वह सरकार की अपनी इच्छा तथा मति की बात है। इससे महारानी को यह न समझ लेना चाहिए कि इस रियासत का दत्तक स्वीकार हो जाने से, सभी रियासतों का यह अधिकार मान लिया जाएगा। लगतार बनती बिगड़ती परिस्थितियों से रानी लक्ष्मीबाई बड़ी दुखित हो

गयी थी अन्दर ही अंदर एक चिंगारी ज्वाला का रूपा धारण कर रही थी, रानी को यह आभास हो चुका था कि बिट्रिश हुकूमत के खिलाफ तलवार उठानी ही पड़ेगी, क्योंकि बड़े खुरापाती दिमाग के है अंग्रेजी हुकूमत के कारनामों से भोली भाली रानी एक ज्वाला बन चुकी थी, उन्होंने अपने खास सिपहसलाकारों को भी बता दिया था कि तलवार ही हमें मदद करेगी। युद्ध होना अनिवार्य हो गया था, तत्कालीन परिस्थितियों ने क्रांति को आवश्यक बना दिया था।

संदर्भ सूची

1. **प्राणनाथ वानप्रथी,** झाँसी की रानी, पृ. 22
2. **वही,** पृ. 29
3. **वही,** पृ. 69
4. **गोपी चन्द्र नागर**, जय झांसी की रानी, पृ. 55
5. **वही,** पृ. 95
6. **वही,** पृ. 119
7. **वही**, पृ. 229
8. **योगेन्द्रनाथ गुप्ता,** झांसी की रानी, पृ. 67.
9. **भगवानदास श्रीवास्तव,** झांसी की रानी असमंजस में, पृ. 42
10. **वही,** पृ. 59
11. **वही,** पृ. 117
12. **डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी**, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, पृ. 59
13. **गोरे लाल तिवारी,** बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 11
14. **यज्ञदत्त शर्मा,** बुन्देलखण्ड समग्र, पृ. 110
15. **प्राणनाथ वानप्रस्थी**, झांसी की रानी, पृ. 178
16. वही, पृ. 180
17. वही, पृ. 197
18. डॉ. रूद्र किशोर पाण्डेय, झांसी, पृ. 9
19. वही पृ. 11
20. वही, पृ. 21
21. **भगवानदास श्रीवास्तव**, 1857 की क्रांति और विद्रोही राजा बखतवल,पृ.9
22. वही, पृ. 11
23. वही, पृ. 23
24. **प्राणनाथ वानप्रस्थी**, झांसी की रानी, पृ. 180
25. वही, पृ. 185
26. वही, पृ. 187
27. **गोरे लाल तिवारी,** बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 13
28. **वही,** पृ. 18
29. **वही,** पृ. 20
30. **गोपी चन्द्र नागर**, जय झांसी की रानी, पृ. 60
31. **डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी**, बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, पृ. 119
32. वही, पृ. 156
33. **योगेन्द्रनाथ गुप्ता,** झांसी की रानी, पृ. 97
34. वही, पृ. 147

Copyright © 2017, Dr Kishan Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.